श्री ... नागरी भण्डार
क्रमांक ....
दिनांक ....
... बीकानेर

10736
28-5-90

GIFTED BY
RAJA RAMMOHUN ROY
LIBRARY FOUNDATION
Block DD-34, Sector-1, Salt Lake City,
CALCUTTA-700064.

मूल्य : चालीस रुपये
प्रकाशक : जगदीश भारद्वाज
सामयिक प्रकाशन
3543, जटवाड़ा, दरियागंज
नई दिल्ली-110002
संस्करण : 1989
सर्वाधिकार : सुरक्षित
कलापक्ष : हरिपाल त्यागी
मुद्रक : तरुण प्रिंटर्स, शाहदरा
दिल्ली-110032

BHARAT KI SHRESTH LOK KATHAEN
By Mahesh Bhardwaj Price : Rs. 40.

दो शब्द

महाराज विक्रमादित्य एक परमोज्ज्वल नक्षत्र थे। उनके गुणों को लेकर अनेक दतकथाएँ और लोककथाएँ प्रचलित हैं। यद्यपि इन कथाओं मे चमत्कार है, पर वे बडी प्रेरक और शिक्षाप्रद हैं।

यहाँ हमने उन्ही कथाओं में से चुनी हुई ३७ कथाओं को नया रंग और नया वेश दिया है। कथाएँ वही हैं, पर नया रग देने के कारण वे नये जीवन के अधिक अनुकूल हो गई हैं।

इन कथाओ से बालकों का मनोरजन तो होगा ही, उन्हे दया, साहस, ममता, और न्याय की ओर बढने की प्रेरणा भी मिलेगी।

आशा है, बालको की उन्नति चाहने वाले समाज के विवेकवान लोग, इन कथाओं को बालको तक पहुँचायेंगे।

कहानी-क्रम

१ तुला-लग्न का महल	९
२. भाग्य बड़ा है या बल	१४
३ सूर्य का कुण्डल	१९
४ अनोखा दान	२३
५ लड़की का उद्धार	२७
६ स्वर्ण-मोहरों की थैली	३२
७ बटुए का दान	३८
८ विश्वासघात का फल	४३
९. बहुमूल्य उड़नखटोला	४७
१० शेषनाग की मणियाँ	५४
११. ज्योतिषी ब्राह्मण	५९
१२. चोरों को दण्ड	६१
१३. बलि का कवच	६८
१४ बुद्धि का चमत्कार	७४
१५ स्त्री किसकी है	८०
१६ वीरवर की स्वामि-भक्ति	८४
१७ दुष्टता का फल	९०
१८ धोबी की स्त्री	९९
१९. स्वामी और सेवक	१०१

२० धर्म-रक्षा १०७
२१ राजा की वीरता ११३
२२ चोर की पगड़ी ११९
२३ धर्मवती राजा १२६
२४ प्राणदान १३१
२५ गणपता की बूढ़ो १३७

तुलालग्न का महल

दोपहर के पहले का समय था।

महाराज विक्रमादित्य राजसभा में राजसिंहासन पर आसीन थे। राज-काज देख रहे थे।

सहसा एक ब्राह्मण ने विक्रमादित्य के सामने पहुंचकर उनकी जयजयकार की।

विक्रमादित्य ने ब्राह्मण को प्रणाम करते हुए कहा, "क्या बात है ब्राह्मण श्रेष्ठ! आप मेरी जयजयकार क्यों कर रहे हैं?"

ब्राह्मण ने विक्रमादित्य को आशीर्वाद देते हुए कहा, "महाराज, आप एक प्रतापी पुरुष हैं। मैं चाहता हूँ, आपका प्रताप और अधिक फैले। यदि आप मेरे कहने के अनुसार कार्य करें, तो आपके प्रताप का सूर्य सारे ससार में चमक उठेगा।"

विक्रमादित्य ने उत्तर दिया, "ब्राह्मण श्रेष्ठ, मुझे इस बात की बिलकुल इच्छा नही है कि, मेरे प्रताप का सूर्य सारे ससार में चमके, पर फिर भी मैं आपकी प्रसन्नता के लिए, आपके कहने के अनुसार काम करने के लिए तैयार हूँ। बताइए, मुझे क्या करना होगा?"

ब्राह्मण ने कहा, "महाराज, आप तुला-लग्न में एक सुन्दर

महल बनवाकर उसमें रहें। तुला-लग्न में बने हुए महल में रहने से, आपके यश की पताका दिन दूनी, रात चौगुनी फहरेगी।"

महाराज विक्रमादित्य ने ब्राह्मण की बात मान ली। उन्होंने मन्त्री को बुलाकर, तुला-लग्न में सुन्दर महल बनवाने की आज्ञा दे दी।

महाराज विक्रमादित्य की आज्ञानुसार तुला-लग्न में महल की नींव डाली गई, पर नींव धरते ही तुला-लग्न बीत गई। काम बन्द हो गया।

जब फिर तुला-लग्न आई, तो फिर काम शुरू हुआ। इसी तरह तुला-लग्न आने पर काम शुरू होता, और खतम होने पर काम बन्द हो जाता था।

तुला-लग्न लगने पर हजारों-लाखों मजदूर काम में लग जाते थे। फिर भी महल को तैयार होने में बहुत दिन लग गए, क्योंकि तुला-लग्न जब भी आती थी, थोड़े ही समय तक रहती थी।

बहुत दिनों के बाद महल बनकर तैयार हुआ। महल क्या था, पूरा इन्द्र-भवन था। उसमें संगमर्मर के पत्थर और सोने-चाँदी के किवाड़ लगे थे, दीवारों में हीरे-जवाहिरात लगे थे। सूर्य की किरणों से महल ऐसा चमकता था, मानो पूरा सोने-चाँदी का बना हो।

महल बनने पर मंत्री ने महाराज विक्रमादित्य से निवेदन किया, "महाराज, महल बनकर तैयार हो गया है। अब आप उसमें रहना आरंभ करें।"

महाराज विक्रमादित्य एक शुभ मुहूर्त में, रहने के लिए मह[ल] के भीतर गए। उनके साथ उनका ब्राह्मण पुरोहित भी था।

महाराज विक्रमादित्य महल को देखकर प्रसन्न हो उठे, [पर] पुरोहित के भीतर से आह की साँस निकल पड़ी।

महाराज विक्रमादित्य ने पुरोहित की ओर देखते हुए प्र[श्न]

किया, "पुरोहित जी, इस सुन्दर महल को देखकर आपको भी मेरी ही तरह प्रसन्न होना चाहिए, पर आपके भीतर आह की सांस क्यों निकली ?"

पुरोहित ने हाथ जोड़कर निवेदन किया, "महाराज, आप और हम दोनों मनुष्य हैं, पर एक आपका भाग्य है जो आप इतने सुन्दर महल में रहेंगे, और एक मेरा भाग्य है जो मुझे टूटी खाट पर सोना पड़ता है।"

पुरोहित ने अपनी बात समाप्त करते-करते पुनः आह की लम्बी सांस ली।

महाराज विक्रमादित्य मन ही मन सोचने लगे। कुछ देर के बाद उन्होंने शीघ्र गंगाजल और तुलसीदल लाने की आज्ञा दी।

महाराज विक्रमादित्य ने हाथ में गंगाजल और तुलसीदल लेकर कहा, "पुरोहित जी, आप दुखी न हों। मैं यह महल आपको दान कर रहा हूँ। आज से यह महल आपका है।"

महाराज विक्रमादित्य ने गंगाजल और तुलसीदल पुरोहित के हाथ में दे दिया।

पुरोहित की प्रसन्नता का ठिकाना नहीं था। वह अपने बाल-बच्चों के साथ महल में रहने के लिए गया।

पहले दिन की रात थी। पुरोहित महल में सोने के पलंग पर गाढ़ी नींद में सो रहा था।

सहसा लक्ष्मी ने प्रकट होकर आवाज़ दी, "पुरोहित, तुम तुला-लग्न में बने हुए मकान के मालिक हो। मैं तुम पर बहुत प्रसन्न हूँ। बताओ, मैं क्या करूँ ?"

पुरोहित की नींद खुल गई। उसने देखा, उसके सामने एक बूढ़ी स्त्री खड़ी है। लक्ष्मी बूढ़ी स्त्री के वेश में थी।

पुरोहित डर गया। उसने मखमली चादर में अपना मुँह

छिपा लिया।

लक्ष्मी चली गईं।

दो-तीन घण्टे के बाद फिर लक्ष्मी आईं। उन्होंने फिर कहा, "पुरोहित देवता, मैं बहुत प्रसन्न हूं। बताओ, मैं क्या करूं?"

पुरोहित ने लक्ष्मी को देखा। उनका वृद्ध शरीर था। सिर पर पके-पके बाल थे, मुंह के दांत टूट गये थे। वे लक्ष्मी होने पर भी डरावनी लग रही थीं।

पुरोहित के तो प्राण निकल गये। उसकी घिग्घी बंध गई। वह 'ऊं-ऊं, गूं-गूं' करने लगा।

लक्ष्मी चली गईं।

किसी तरह रात बीती। सवेरा होते ही पुरोहित महाराज विक्रमादित्य की सेवा में उपस्थित हुआ।

पुरोहित ने हाथ जोड़कर महाराज विक्रमादित्य से कहा, "महाराज, हम उस महल में नहीं रहेंगे। मैं अपनी प्रसन्नता से आपके दान को लौटा रहा हूँ।"

महाराज विक्रमादित्य को बड़ा आश्चर्य हुआ। उन्होंने बड़े ही आश्चर्य के साथ पूछा, "आखिर, क्यों? आप इतने सुन्दर महल में क्यों नहीं रहेंगे?"

पुरोहित ने हाथ जोड़कर निवेदन किया, "महाराज, उस महल में भूत रहते हैं। हम उस महल में नहीं रहेंगे। आप अपना दान वापस ले लें।"

महाराज विक्रमादित्य मुस्कुरा उठे। पुरोहित ने उनका दान उन्हें लौटा दिया।

विक्रमादित्य ने मंत्री को बुलाकर हुक्म दिया, "मैंने पुरोहित को नया महल दान में दिया था, पर उसने महल लेने से इसलिए इन्कार कर दिया कि उसमें भूत रहते हैं। महल बनाने में जितना रुपया लगा है, उतना रुपया पुरोहित को दे दिया जाय; क्योंकि

में महल को दान में दे चुका हूँ।"

पुरोहित को महल की पूरी लागत दे दी गई।

अब विक्रमादित्य स्वयं उस महल में रहने के लिए गये।

विक्रमादित्य रात मे महल में सोने के पलंग पर सोये। उनके सामने लक्ष्मी जी प्रकट हुईं। लक्ष्मी जी सुन्दर वेश में थी।

लक्ष्मी जी ने कहा, "महाराज, मैं आपके दान और ऊँचे विचारों से बहुत प्रसन्न हूँ। बताइए, मैं आपकी क्या सेवा करूँ?"

विक्रमादित्य ने आँखें खोलकर देखा, उनके सामने लक्ष्मी जी खड़ी थीं। लक्ष्मी ने फिर कहा, "महाराज, मैं लक्ष्मी हूँ। मैं आपके अच्छे कार्यों से बहुत प्रसन्न हूँ। बताइए, मैं आपकी क्या सेवा करूँ?"

विक्रमादित्य ने बड़े आदर के साथ लक्ष्मी जी को प्रणाम किया, कहा, "यदि आप मुझ पर प्रसन्न हैं, तो मेरे राज्य में सोने की वर्षा करें।"

लक्ष्मी जी ने विक्रमादित्य की इच्छा पूरी की। उनके सपूर्ण राज्य में सोने की भारी वर्षा हुई।

राज्य के बड़े-बड़े कर्मचारी दौड़-दौड़कर विक्रमादित्य की सेवा में उपस्थित हुए। उन्होंने विक्रमादित्य को खबर सुनाई, "महाराज, अद्भुत आश्चर्य! चारों ओर सोने की वर्षा हो रही है।"

विक्रमादित्य ने बड़े ही शान्त भाव से उत्तर दिया, "राज्य में चारों ओर ढिंढोरा पिटवा दो, जिसकी सीमा में जितना सोना बरसे वह उसे ले ले। कोई किसी दूसरे का सोना न ले।"

विक्रमादित्य की आज्ञा का पालन हुआ। ढिंढोरा पीटकर सबको उनका आदेश सुना दिया गया।

राज्य की जनता हर्ष में डूब गई। सब लोग अपनी-अपनी सीमा में बरसे हुए सोने को बटोरने लगे।

सोने को पाकर, राज्य के सभी लोग सुख से जीवन बिताने लगे, विक्रमादित्य को आशीर्वाद देने लगे।

पर विक्रमादित्य को यश, वरदान और आशीर्वाद से कोई मतलब नहीं था। उन्हें मतलब था प्रजा की भलाई से, परोपकार से।

विक्रमादित्य को प्रजा की भलाई से, परोपकार से जितना सुख मिलता था, उतना यश, वरदान और गुणगान से नहीं मिलता था—बिलकुल नहीं मिलता था।

२

भाग्य बड़ा है या बल !

एक गाँव में दो ब्राह्मण रहते थे। दोनों पड़ोसी थे।

एक दिन दोनों ब्राह्मणों में बहस छिड़ गई, "भाग्य बड़ा है या बल! एक कहता था, भाग्य बड़ा है, दूसरा कहता था, नहीं बल बड़ा है।"

दोनों में देर तक बहस चलती रही।

जब कुछ निपटारा न हुआ, तो दोनों ब्राह्मण स्वर्ग के राजा इन्द्र के पास गए। उन्होंने इन्द्र के सामने अपना प्रश्न रखा, "कृपा कर आप बतायें, भाग्य बड़ा है या बल?"

पर इन्द्र से भी यह प्रश्न हल न हो सका। उसने कहा, "इस प्रश्न का ठीक-ठीक उत्तर पृथ्वी के राजा विक्रमादित्य को छोड़कर और कोई नहीं दे सकता।"

दोनों ब्राह्मण विक्रमादित्य की राजसभा में उपस्थित हुए। उन्होंने विक्रमादित्य के सामने अपना प्रश्न रखा, "महाराज, आप पृथ्वी पर सबसे बढ़कर ज्ञानी हैं। कृपया आप बतायें, भाग्य बड़ा है या बल?"

विक्रमादित्य विचारों में डूब गए।

कुछ देर बाद, विक्रमादित्य ने सोचते हुए कहा, "इस समय तुम दोनों जाओ। ठीक छः मास बाद फिर आना। तब मैं बताऊँगा, भाग्य बड़ा है या बल।"

दोनों ब्राह्मण अपने घर लौट गए।

विक्रमादित्य ने मन ही मन बड़ा सोच-विचार किया, पर वे किसी नतीजे पर नहीं पहुँच सके—भाग्य और बल, दोनों में कौन सबसे बड़ा है?

पर विक्रमादित्य को यह प्रश्न हल करना था, क्योंकि वे दोनों ब्राह्मणों को, उत्तर देने का वचन दे चुके थे।

विक्रमादित्य राज-काज मंत्रियों को सौंपकर, प्रश्न का उत्तर ढूंढने के लिए, वेश बदलकर बाहर निकल पड़े।

विक्रमादित्य एक नगर में, एक बहुत बड़े सेठ के पास पहुँचे। उन्होंने सेठ से प्रार्थना की, वह उन्हें नौकर रख ले।

सेठ ने पूछा, "कौनसा काम करोगे? कितना वेतन लोगे?"

विक्रमादित्य ने उत्तर दिया, "मैं एक लाख रुपये मासिक लूँगा। जो काम कोई नहीं कर सकेगा, मैं उसे करूँगा।"

सेठ ने विक्रमादित्य को नौकर रख लिया।

विक्रमादित्य को जब पहले मास का वेतन मिला, तो उन्होंने कुछ धन खाने-पीने के लिए रखकर, बाकी सब दान-पुण्य में खर्च कर दिया।

इसी तरह कई मास बीत गए। विक्रमादित्य को हर महीने लाख रुपये मिलते। वे अपने निर्वाह के लिए रखकर, शेष सब रुपये दान-पुण्य में खर्च कर दिया करते थे।

काम उन्हें कुछ भी नहीं करना पड़ता था। विक्रमादित्य बड़े प्रसन्न हुए। उन्होंने सोचा, भाग्य का कैसा चमत्कार है! काम कुछ नहीं, पर वेतन में मिलते हैं लाख रुपये।

कुछ दिनों के बाद सेठ व्यापार के लिए विदेश गया। उसके साथ विक्रमादित्य भी विदेश गए।

कुछ काल बाद सेठ बहुत-सा माल जहाज पर लादकर, अपने घर की ओर लौट रहा था। सहसा उसका जहाज समुद्र के जंगल में फँस गया। उसने बड़ी-बड़ी मन्नतें मानी, भगवान से बहुत प्रार्थनाएं कीं, पर जहाज टस से मस न हुआ।

जहाज पर विक्रमादित्य भी थे। सेठ ने विक्रमादित्य से कहा, "तुमने कहा था, जो काम कोई नहीं कर सकेगा, उसे तुम करोगे। मेरा जहाज टस से मस नहीं हो रहा है। तुम किसी तरह मेरे जहाज को बाहर निकालो।"

विक्रमादित्य शीघ्र ही जहाज की रस्सी पकड़कर, हाथ में तलवार लेकर समुद्र में उतर पड़े।

विक्रमादित्य ने समुद्र में डुबकी लगाकर देखा, तो जहाज समुद्री झाड़ियों में फँसा हुआ था।

विक्रमादित्य ने तलवार से समुद्री झाड़ियां काट डालीं।

जहाज चल पड़ा, पर विक्रमादित्य के हाथ की रस्सी छूट गई। वे समुद्र में बह गए।

जहाज तो चला गया, पर विक्रमादित्य समुद्र में तैरने लगे। वे साहस से तैरते-तैरते एक ऐसे द्वीप में पहुँचे, जहाँ स्त्रियों का राज्य था, जहाँ कोई पुरुष नहीं था।

उस राज्य की रानी का नाम अम्बावती था। वह कुमारी थी। उसे किसी योगी ने बताया था, कि एक दिन उज्जैन के राजा विक्रमादित्य तैरकर यहाँ आयेंगे। वही तुम्हारे पति होंगे।

अम्बावती बड़ी उत्सुकता से विक्रमादित्य का रास्ता देख रही थी।

विक्रमादित्य जब तैरकर अम्बावती के नगर में पहुँचे, तो उसकी सेविकाओं ने एक तेजस्वी-पुरुष के आने की सूचना

उसे दी।

अम्बावती ने बड़े आदर से विक्रमादित्य को अपने दरबार में बुलाया। वह उन्हें देखते ही पहचान गई, क्योंकि योगी के कहने के अनुसार विक्रमादित्य को छोड़कर उसके नगर मे कोई दूसरा पुरुष नही आ सकता था।

अम्बावती ने विक्रमादित्य के साथ विवाह कर लिया।

विक्रमादित्य अम्बावती के महल में रहने लगे।

अम्बावती तंत्र-मंत्र जानती थी। उसने तंत्र-मत्र से विक्रमादित्य को अपने वश में कर लिया। वे राज्य और अपनी प्रजा को बिलकुल भूल गए। वे यह भी भूल गए कि वे किस उद्देश्य से बाहर निकले हुए थे।

अम्बावती की दासी सुधर्मा विक्रमादित्य के लिए रोज पान के बीड़े लगाया करती थी। विक्रमादित्य जब खाना खाकर आराम करने लगते, तो वह उनके पास पान के बीड़े लेकर जाती थी।

सुधर्मा जब भी विक्रमादित्य के पास पान के बीडे लेकर जाती थी, उसकी आँखों मे आंसू होते थे।

एक दिन विक्रमादित्य ने सुधर्मा से पूछा, "सुधर्मा, जब भी तू मेरे पास पान के बीड़े लेकर आती है, तुम्हारी आँखों में आंसू रहते हैं। बताओ, तुम्हारी आँखों मे आंसू क्यों रहते हैं?"

पहले तो सुधर्मा ने कुछ उत्तर न दिया, पर जब विक्रमादित्य ने अधिक हठ के साथ पूछा, तो उसने कहा, "महाराज, ये मेरे आँसू आपके लिए हैं। आप एक धार्मिक प्रतापी राजा हैं। आपकी प्रजा आपका रास्ता देख रही है, पर आप यहाँ अम्बावती के जाल में फँसकर, अपना कर्त्तव्य भूल गए हैं। अम्बावती तंत्र-मंत्र जानती है। अब आपका यहाँ से छुटकारा कभी न होगा।"

विक्रमादित्य के मन में ज्ञान पैदा हो गया। उन्होंने सुधर्मा से

पूछा, "आखिर कोई ऐसा उपाय है, जिससे मैं यहाँ से जा सकता हूँ।"

सुधर्मा ने जवाब दिया, "हाँ, एक उपाय है महाराज! अम्बावती की घुड़शाल में श्यामकर्ण घोड़ा है। उसका सारा शरीर तो सफेद है, पर दोनों कान काले हैं। आप उसकी पीठ पर बैठकर कहें—चल श्यामकर्ण, उज्जैन चल, तो वह आपको उज्जैन पहुँचा देगा। श्यामकर्ण को छोड़कर, दूसरा कोई आपको उज्जैन नहीं पहुँचा सकता।"

विक्रमादित्य उसी दिन से रोज घुड़साल में जाकर घोड़ों को देखने लगे। उनके साथ अम्बावती भी होती थी।

एक दिन विक्रमादित्य ने अम्बावती से कहा, "अम्बावती, आओ, हम दोनों एक साथ ही श्यामकर्ण की सवारी करें।

अम्बावती तैयार हो गई; क्योंकि वह इस संबंध में बिलकुल निश्चित थी कि, श्यामकर्ण घोड़े का भेद विक्रमादित्य को मालूम नहीं है।

अम्बावती विक्रमादित्य के साथ घोड़े की पीठ पर जा बैठी।

विक्रमादित्य ने घोड़े की पीठ पर बैठते ही जोर से एड़ लगाई, और कहा, "चल बेटा श्यामकर्ण, उज्जैन चल।"

घोड़ा उड़ चला। अम्बावती ने बाधा डालने का यत्न किया। विक्रमादित्य ने साहस से काम लिया। उन्होंने उसे समुद्र में गिरा दिया। वह समुद्र में डूब गई।

श्यामकर्ण विक्रमादित्य को लेकर उज्जैन पहुँचा।

सारी उज्जैन नगरी, अपने राजा को पाकर हर्ष से नाच उठी। विक्रमादित्य राजसिंहासन पर बैठकर फिर अपनी प्रजा को सुख देने लगे।

अनेक मास बीत गए थे। एक दिन दोनों ब्राह्मण फिर विक्रमादित्य की राजसभा में उपस्थित हुए। उन्होंने विक्रमादित्य

से कहा, "महाराज, कितने ही महीने बीत गए। आप अब यह बतायें, भाग्य और बल—दोनों में कौन बड़ा है?"

विक्रमादित्य ने उत्तर दिया, "दोनों मे कोई बड़ा-छोटा नही, दोनो बराबर है।"

विक्रमादित्य ने प्रमाण में अपनी पूरी कहानी ब्राह्मणों को सुना दी। उन्होने कहा "इस कहानी मे भाग्य और बल—दोनों का चमत्कार है।"

दोनो ब्राह्मण विक्रमादित्य की बहुत-बहुत प्रशंसा करते हुए अपने घर चले गए।

३

सूर्य का कुण्डल

सवेरे के बाद का समय था।

विक्रमादित्य यज्ञशाला में हवन-जप कर रहे थे। एक ब्राह्मण उनके सामने उपस्थित हुआ।

विक्रमादित्य ने ब्राह्मण को बडे आदर से बिठाया। उन्होंने ब्राह्मण से विनयपूर्वक पूछा, "कहिए ब्राह्मण श्रेष्ठ, आपको क्या चाहिए?"

ब्राह्मण ने उत्तर दिया, "महाराज, मुझे कुछ चाहिए नही। मैं तो आपको एक ऐसी भेद की बात बताने आया हूँ, जिसे मुझे छोड़कर और कोई नही जानता।"

विक्रमादित्य ने उत्सुक होकर कहा, "कहिए, वह कौनसी भेद की बात है।"

ब्राह्मण ने कहा, "महारा- हिमालय की तराई में कमलों का एक तालाब है। उसमें सो- का एक स्तम्भ है। वह सूर्योदय होने पर पानी से ऊपर उठता है। ज्यों-ज्यों सूर्य ऊपर उठता है,

त्यों-त्यों वह स्तम्भ भी ऊपर उठता है। इतना ऊपर उठता है कि
सूर्य के पास पहुँच जाता है।

फिर ज्यों-ज्यों सूर्य ढलने लगता है, वह स्तम्भ भी घट
लगता है। संध्या होते-होते वह फिर पानी में समा जाता है।"

ब्राह्मण विक्रमादित्य के मन में उत्सुकता पैदा करके चल
गया।

विक्रमादित्य उस सोने के स्तम्भ को देखने के लिए उत्कंठित
हो उठे, पर उसे देखें तो किस तरह देखें? ब्राह्मण के कहने के
अनुसार वह सरोवर, जिसमें स्तम्भ था, हिमालय की तराई में
था। हिमालय की तराई उज्जैन से बहुत दूर थी।

पर विक्रमादित्य के मन में, स्तम्भ को देखने की उत्कंठा पूरी
तरह से पैदा हो चुकी थी।

विक्रमादित्य ने ताल-वैताल को याद किया।

ताल-वैताल—दो देव थे। दोनों बड़े बलवान थे। दोनों न
होने वाले कामों को भी करने की शक्ति रखते थे। विक्रमादित्य
की वीरता, उनके दान-पुण्य, और उनके अच्छे कार्यों के कारण
दोनों देव उनके वश में थे।

विक्रमादित्य के याद करने पर दोनों देव उनकी सेवा में
उपस्थित हुए।

देवों ने कहा, "महाराज, आपने हमें क्यों याद किया?
कहिए, हम आपके लिए कौनसा काम करें?"

विक्रमादित्य ने कहा, "हिमालय की तराई में कमलों का एक
सुन्दर सरोवर है। तुम हमें उस सरोवर के पास पहुँचा दो।"

ताल-वैताल ने विक्रमादित्य की आज्ञा का पालन किया।
अपने कंधे पर बिठाकर उन्हें हिमालय की तराई में कमलों के
सरोवर के पास पहुँचा दिया।

दोपहर का समय था। सरोवर में रंग-रंग के कमल खिले हुए

थे। रह-रहकर भौंरे गुंजार कर रहे थे, रह-रहकर सुगंध उठ रही थी। सोने का स्तम्भ ऊपर उठकर, सूर्य के पास पहुँच चुका था।

विक्रमादित्य उस अनोखे दृश्य को देखकर आश्चर्य में डूब गए। वे टकटकी लगाकर सोने के स्तम्भ की ओर देखने लगे।

विक्रमादित्य ताल-बैताल के साथ सरोवर के पास ही छिप गए। उन्होंने बड़े आश्चर्य के साथ उस दृश्य को भी देखा, जब सूर्य के ढलने के साथ ही साथ स्तम्भ घटने लगा, और घटते-घटते संध्या समय सरोवर के पानी में समा गया।

दूसरे दिन सवेरा हुआ। सूर्योदय होने पर सोने का स्तम्भ फिर जल से ऊपर उठा।

विक्रमादित्य ने ताल-बैताल से कहा, "तुम हमें उस स्तम्भ के ऊपर बिठाकर लौट जाओ। जब जरूरत होगी तब फिर हम तुम्हें याद करेंगे।"

ताल-बैताल ने विक्रमादित्य की आज्ञा का पालन किया। वे उन्हें सोने के स्तम्भ के ऊपर बिठाकर लौट गए।

सूर्य भगवान धीरे-धीरे ऊपर उठने लगे। उनके ऊपर उठने के साथ ही साथ सोने का स्तम्भ भी ऊपर उठने लगा। ज्यों-ज्यों सोने का स्तम्भ ऊपर उठने लगा, त्यों-त्यों गर्मी भी पड़ने लगी।

सोने का स्तम्भ जब सूर्य भगवान के पास पहुँचा, तो भयानक गर्मी से विक्रमादित्य का शरीर जल गया। वे निष्प्राण हो गए।

मध्य दोपहर में सोने का स्तम्भ सूर्य भगवान के रथ से आ टकराया।

सूर्य भगवान् ने अपना रथ रोक दिया। वह रोज दोपहर में, इसी तरह अपना रथ रोककर, सोने के उस स्तम्भ पर बैठकर खाना खाया करते थे।

उस दिन जब सूर्य भगवान् अपना रथ रोककर खाना खाने

के लिए सोने के स्तम्भ पर उतरे, तो वहाँ एक मनुष्य के शव को देखकर आश्चर्य में डूब गए।

सूर्य भगवान् मन ही मन सोचने लगे, यह मनुष्य इस स्तम्भ पर कैसे आया ? यह अवश्य कोई महान् तेजस्वी और प्रतापी मनुष्य है, क्योंकि किसी भी साधारण मनुष्य की इस स्तम्भ तक पहुँच नहीं हो सकती।

सूर्य भगवान् के मन में दया पैदा हो उठी। उन्होंने अपने कमण्डल में से अमृत लेकर विक्रमादित्य पर छिड़क दिया।

विक्रमादित्य जीवित हो उठे। उनका शरीर फिर पहले की तरह सुन्दर हो गया।

विक्रमादित्य ने बड़े आश्चर्य से देखा, सूर्य भगवान अपने रथ के साथ उनके सामने खड़े थे।

विक्रमादित्य ने बड़े आदर से सूर्य भगवान को प्रणाम किया, दोनों हाथ जोड़कर कहा, "प्रभो, मैं बड़ा भाग्यशाली हूँ जो अपनी मनुष्य की आँखों से आपका दर्शन कर रहा हूँ।"

विक्रमादित्य की श्रद्धा और प्रेम को देखकर सूर्य भगवान प्रसन्न हो गए। उन्होंने प्रश्न किया, "तुम कौन हो ? इस स्तम्भ के ऊपर, तुम किस तरह आये ?"

विक्रमादित्य ने उत्तर दिया, "प्रभो, मैं उज्जैन का राजा विक्रमाजीत हूँ। मैं ताल-वेताल नामक देवों की सहायता से, इस स्तम्भ के ऊपर आया हूँ।"

सूर्य भगवान मुस्कुरा उठे।

सूर्य भगवान ने मुस्कुराते हुए कहा, "तो तुम्हीं पृथ्वी के दानी राजा विक्रमाजीत हो ! तुम सचमुच, मनुष्यों में देवताओं के समान हो। यदि तुम अपने अच्छे कर्मों से देवता न बन गए होते तो, सोने के इस स्तम्भ तक कभी नहीं पहुँच पाते। कोई भी साधारण आदमी इस स्तम्भ तक नहीं पहुँच सकता।"

सूर्य भगवान ने और आगे कहा, "मैं तुम पर बहुत प्रसन्न हूँ। मैं तुम्हे सोने का एक कुण्डल और 'आदित्य' की उपाधि दे रहा हूँ। जब तुम कुण्डल और आदित्य की उपाधि धारण करके राजसिंहासन पर बैठोगे, तो मेरे समान ही प्रकाशवान बनोगे।"

सूर्य भगवान् विक्रमादित्य को सोने का कुण्डल और आदित्य की उपाधि देकर चले गए।

विक्रमादित्य सोने के स्तम्भ के साथ-साथ फिर नीचे सरोवर में पहुँचे। उन्होंने फिर ताल-बैताल को याद किया। ताल-बैताल शीघ्र ही उपस्थित हुए। उन्होंने विक्रमादित्य को फिर उज्जैन पहुँचा दिया।

विक्रमाजीत सोने का कुण्डल पहनकर, 'आदित्य' की उपाधि धारण करके राजसिंहासन पर बैठे।

'आदित्य' की उपाधि धारण करने पर विक्रमाजीत 'विक्रमादित्य' कहलाने लगे। वे सचमुच सूर्य के समान प्रकाशवान हुए!

अनोखा दान

वसन्त के दिन थे।

बगीचे में तरह-तरह के फूल खिले हुए थे। फूलों पर भौंरे गुंजार कर रहे थे। हवा में रह-रहकर सुगंध उड़ रही थी। पेड़ों की डालियों पर तरह-तरह के पक्षी मीठे-मीठे स्वरों में बोल रहे थे। बगीचे में आनन्द का सागर लहरा रहा था।

विक्रमादित्य बगीचे में घूम रहे थे, फूलों से मनोविनोद कर रहे थे!

सहसा एक मनुष्य बगीचे में उपस्थित हुआ। उस मनुष्य का

मुख कुम्हलाया हुआ था, आँखें सूनी और उदास थीं। उसके सिर के रूखे-रूखे बाल थे। वह नंगे पैर था, फटे कपड़े पहने हुए था।

वह मनुष्य विक्रमादित्य के पास पहुँचकर उनके पैरों पर गिर पड़ा, दुख-भरी आवाज में बोला, "महाराज, मैं आपकी शरण में हूँ। दया करके मुझे दुख से उबारिए।"

विक्रमादित्य ने बड़े प्रेम से उसे उठाया, उसके सिर पर हाथ रखकर कहा, "तुम किसी तरह की चिन्ता न करो। मैं अपने प्राण भी देकर तुम्हें दुःखों से छुड़ाऊँगा। बताओ, तुम कौन हो? तुम्हें कौन-सा दुःख है?"

मनुष्य ने दुख-भरे स्वर में कहा, "महाराज, मैं कालिंजर का रहने वाला एक क्षत्रिय कुमार हूँ। मेरा नाम अभयराज है। मेरा पिता एक साधारण किसान है।

"एक दिन एक योगी मेरे घर आया। उसने मुझसे कहा, 'रूपनगर के राजा की लड़की बड़ी सुन्दर और भाग्यशालिनी है। उस जैसी सुन्दर और भाग्यशाली लड़की तीनों लोक में दूसरी कोई नहीं है। जिस किसी पुरुष के साथ उसका विवाह होगा, वह बड़ा यशवान बनेगा।'

"योगी की बात सुनकर मेरे मन में लालच पैदा हो उठा। मैंने योगी के पैरों को पकड़कर कहा, 'महाराज, कोई ऐसा उपाय बतायें, जिससे उस लड़की के साथ मेरा विवाह हो सके।'

"योगी ने उत्तर दिया, 'यह बड़ा कठिन काम है। रूपनगर के राजा ने अपनी पुत्री के विवाह के लिए स्वयंवर किया है। स्वयंवर-सभा में एक कड़ाह आग पर रखा हुआ है। कड़ाह में तेल खौल रहा है। राजा का कहना है, जो खौलते हुए तेल में कूदकर सही-सलामत बाहर निकल आयेगा, उसी के साथ उसकी लड़की का विवाह होगा।'

"देश-देश के राजा, लड़की की सुन्दरता से खिंचकर उसके

साथ विवाह करने के लिए आते हैं, पर अपना-सा मुंह लेकर लौट जाते हैं। खौलते हुए तेल में कूदने का साहस किसी में नहीं होता।

" 'जो कोई साहस करके कूदता है, वह जलकर मर जाता है।'

" 'बेचारी लड़की हाथ में वरमाल लिये हुए अब तक निराश बैठी है।'

"महाराज, योगी तो चला गया, पर मेरे मन में तूफान पैदा हो गया। मैं अपने को सँभाल न सका।

"मैं स्वयं रूपनगर गया। मैंने लड़की को देखा, लड़की के स्वयंवर को देखा। उस कड़ाह को भी देखा, जिसमें तेल खौल रहा था।

"लड़की को देखकर मैं उस पर तन-मन से निछावर हो गया, पर खौलते हुए तेल में कूदने का साहस मुझमें नहीं हुआ। मैं निराश होकर लौट आया।

"पर वह लड़की मेरे मन में समा गई है। मुझे खाना-पीना, काम-काज कुछ भी अच्छा नहीं लगता। मैं इधर से उधर मारा-मारा घूमता-फिरता हूँ। महाराज, मेरी समझ में नहीं आता, मैं क्या करूं? कैसे इस दुख से छुटकारा पाऊं?"

विक्रमादित्य ने अभयराज को धैर्य बंधाया, कहा, "तुम चिन्ता न करो। मेरे साथ राजमहल में चलो। भगवान की दया होगी, तो तुम दुख से छूट जाओगे।"

विक्रमादित्य अभयराज को अपने महल में ले गए।

रात हुई। विक्रमादित्य ने नाच-गान का प्रबन्ध किया। उन्होंने एक से एक बढ़कर सुन्दर नर्तकियों और गायिकाओं को बुलाया।

नर्तकियाँ और गायिकाएं अपना-अपना चमत्कार दिखाने

गीं। विक्रमादित्य ने अभयराज से कहा, "तुम ...
राजकुमारी को भूल जाओ। तुम इनमें से किसी के भी साथ विवाह कर सकते हो।"

अभयराज विक्रमादित्य के चरणों पर गिर पड़ा। उसने कहा, "महाराज, मैं क्षत्रिय-कुमार हूँ। मैं विवाह करूँगा, तो रूपनगर की राजकुमारी के ही साथ करूँगा, नहीं तो आजीवन क्वारा रहूँगा।"

विक्रमादित्य प्रसन्न हो उठे। उन्होंने अभयराज के मस्तक पर हाथ रखते हुए कहा, "तुम वीर और दृढ़प्रतिज्ञ हो। तुम्हारी अभिलाषा अवश्य पूर्ण होगी।"

विक्रमादित्य ने दूसरे दिन ताल-वैंताल को याद किया। ताल-वैंताल शीघ्र ही सेवा में उपस्थित हुए। विक्रमादित्य ने उनसे कहा, "हमें रूपनगर में उस जगह पहुँचा दो, जहाँ रूपनगर की राजकुमारी का स्वयंवर हो रहा है।"

विक्रमादित्य अभयराज के साथ सिंहासन पर बैठ गये। ताल-वैंताल ने उन्हें सिंहासन-सहित रूपनगर पहुँचा दिया।

विक्रमादित्य ने स्वयंवर-सभा में पहुँचकर राजकुमारी को देखा। राजकुमारी सचमुच अप्सरा थी, पर उदास थी। उसके हाथ की वरमाला सूखती जा रही थी, पर उसे कोई वर नहीं मिल रहा था।

स्वयंवर-सभा में देश-देश के एक से एक बढ़कर वीर राजा इकट्ठे थे, पर किसी में खौलते हुए तेल में कूदने का साहस नहीं हो रहा था।

विक्रमादित्य के मन का साहस और पौरुष जाग उठा। उन्होंने ताल-वैंताल से कहा, "मैं खौलते हुए तेल में कूदूँगा। मैं अवश्य अभयराज के दुख को दूर करूँगा।"

विक्रमादित्य खौलते हुए तेल में कूद पड़े।

खौलते हुए तेल में कूदने से विक्रमादित्य की मृत्यु हो गई, पर ताल-वेताल ने शीघ्र ही अमृत छिड़ककर उन्हें जीवित कर दिया।

विक्रमादित्य सही-सलामत खौलते हुए तेल से बाहर निकल गये। सारी स्वयंवर-सभा उनकी जय-जयकार से गूंज उठी।

राजकुमारी ने वरमाला विक्रमादित्य के गले में डाल दी।

रूपनगर के राजा ने बड़ी धूमधाम से अपनी कन्या का विवाह विक्रमादित्य के साथ कर दिया। उसने दहेज में इतना अधिक धन दिया कि, उस धन को देखकर, स्वयं कुबेर के मन में भी ईर्ष्या पैदा होती थी।

पर विक्रमादित्य ने राजकुमारी-सहित उस धन को अभयराज को दे दिया। उन्होंने राजकुमारी से कहा, "राजकुमारी, अभयराज ही तुम्हारा स्वामी है, क्योंकि मैं इसके साथ तुम्हारा विवाह कराने के लिए ही खौलते हुए तेल में कूदा था।"

विक्रमादित्य के इस अनोखे दान ने उनके यश को चमका दिया—चांद-सूरज की तरह चमका दिया।

५

लड़की का उद्धार

रात का समय था।

उज्जैन में विक्रमादित्य, अपने महल में सो रहे थे। सहसा किसी के रोने की आवाज़ से उनकी नींद खुल गई। वे ध्यान लगाकर रोने की उस आवाज को सुनने लगे।

आवाज बड़ी दूर से आ रही थी।

कोई बड़े ही करुणा-भरे स्वर में, रो-रोकर कह रहा था, "बचाओ, बचाओ! कोई है, कोई है!"

आवाज रह-रहकर आ रही थी। ऐसा लग रहा था, जैसे कोई किसी को सता रहा हो।

विक्रमादित्य के हृदय में दया उमड़ उठी। वे ढाल-तलवार लेकर महल से निकल पड़े। वे उसी ओर चल पड़े, जिस ओर से आवाज आ रही थी।

विक्रमादित्य आवाज के सहारे वन में जा पहुँचे।

वन में एक जगह पहुँचकर विक्रमादित्य ने देखा, एक बहुत बड़ा देव एक सुन्दर लड़की को पकड़े हुए है। लड़की उससे अपने को छुड़ाने का यत्न कर रही है। वह रह-रहकर आवाज लगा रही है, "बचाओ, बचाओ!" पर देव उसे नहीं छोड़ रहा है। देव के मन में, लड़की के लिए बुराई है।

विक्रमादित्य ने देव से कहा, "अरे, तू क्यों इस लड़की को तंग कर रहा है? उसे छोड़ दो।"

देव ने विक्रमादित्य की ओर देखते हुए कहा, "तू कौन है जो मेरे और इसके बीच में पड़ रहा है! मैं चाहे जो करूँगा! तू होता कौन है! जा, चला जा, यहाँ से।"

देव फिर लड़की को तंग करने लगा, लड़की फिर रह-रहकर चीखने लगी, "बचाओ, बचाओ। कोई है! कोई है!!"

विक्रमादित्य का साहस जाग उठा। उन्होंने हाथ में तलवार लेकर आगे बढ़कर कहा, "दुष्ट, लड़की को छोड़ दे। न छोड़ेगा तो मेरी तलवार तेरे सिर पर गिरेगी।"

देव ने लाल-लाल आँखों से विक्रमादित्य की ओर देखा, कहा, "यह बात है! अच्छा, अभी मैं तुम्हें मजा चखाता हूँ।"

देव लड़की को छोड़कर विक्रमादित्य की ओर झपट पड़ा। वह उन्हें पकड़कर खा डालना चाहता था।

पर विक्रमादित्य तो पहले से ही सजग खड़े थे। देव के झपटते ही तलवार चला दी। तलवार का वार भरपूर बैठा!

देव का सिर कटकर जमीन पर जा गिरा।

पर देव मरकर भी नहीं मरा। उसके सिर के कटते ही, उसके शरीर से दो दूसरे देव पैदा हो उठे। वे बड़े बलवान और डरावने थे। दोनों पैदा होकर विक्रमादित्य से लड़ने लगे।

विक्रमादित्य ने एक का तो शीघ्र ही काम तमाम कर दिया, पर दूसरा मैदान में डटा रहा। वह पूरी रात-भर उनसे लड़ता रहा।

पर सबेरा होते-होते दूसरे देव की भी हिम्मत छूट गई। वह भी मैदान छोड़कर भाग निकला।

विक्रमादित्य ने लड़की के पास जाकर कहा, "कन्ये, अब तुम अपने को निरापद समझो! चलो, मेरे साथ चलो! तुम जहां भी जाना चाहोगी, मैं तुम्हें बड़े आदर से पहुंचा दूंगा।"

लड़की बिलख-बिलखकर रोने लगी। उसने रोते-रोते कहा, "नहीं, मैं निरापद नहीं हूं। मैं अब भी विपत्ति के सागर में डूब रही हूं। देव भाग जरूर गया है, पर मैं जहां भी जाऊंगी, वह मेरा पता लगा लेगा। मुझे पकड़ लायेगा।"

विक्रमादित्य को बड़ा आश्चर्य हुआ। उन्होंने बड़े ही आश्चर्य के साथ कहा, "वह तुम्हें किस तरह पकड़ ले जाएगा? मैं उज्जैन का राजा विक्रमादित्य हूं। मैं तुम्हें अपने महल के भीतर रखूंगा! देव का प्रवेश मेरे महल के भीतर नहीं हो सकता।"

लड़की विक्रमादित्य के पैरों पर गिर पड़ी। उसने कहा, "मेरे अहोभाग! आपके दर्शन से मैं धन्य हो गई महाराज! महाराज, उस देव का प्रवेश कहीं भी हो सकता है! उसके पेट में एक मोहिनी रहती है। वह उसके बल से कहीं भी जा सकता है, किसी भी चीज का पता लगा सकता है।"

लड़की की आंखों से आंसू गिरने लगे।

विक्रमादित्य ने कहा, "कन्ये, तुम चाहे जो भी हो, मर

मेरी पुत्री की तरह हो। तुम बिल्कुल मत डरो। मैं देव की मोहिनी से भी तुम्हारी रक्षा करूँगा।"

विक्रमादित्य राजधानी में न जाकर, वहीं एक कुंज में छिपकर बैठ गए, देव के आने की राह देखने लगे।

देव दिन में तो नहीं आया, पर जब रात हुई, तो फिर लड़की के पास पहुँचा। वह पहले ही की तरह फिर लड़की को तंग करने लगा। लड़की फिर पहले की तरह रोने-चीखने लगी, "बचाओ, बचाओ! कोई है, कोई है!!"

विक्रमादित्य पास ही कुंज में छिपकर बैठे हुए थे। वे हाथ में तलवार लेकर बाहर निकल पड़े।

देव विक्रमादित्य को देखते ही टूट पड़ा, पर विक्रमादित्य तो पहले से ही लड़ने के लिए तैयार थे। वे तलवार संभालकर देव से युद्ध करने लगे।

विक्रमादित्य और देव में रात-भर लड़ाई चलती रही। देव ने बड़ा छल-बल किया, पर विक्रमादित्य के साहस और शौर्य के आगे उसकी कुछ न चली। विक्रमादित्य ने अपनी तलवार से उसका भी सिर काटकर गिरा दिया।

देव के गिरते ही उसके शरीर से एक स्त्री निकल पड़ी, जो सचमुच मोहिनी ही थी। उसका नाम तो मोहिनी था ही, रूप-रंग भी 'मोहिनी' के ही समान था।

मोहिनी देव के शरीर से निकलकर, आकाश में उड़कर कहीं जाना चाहती थी, पर विक्रमादित्य ने झपटकर उसे पकड़ लिया। विक्रमादित्य ने कहा, "मैं तुम्हें इस तरह न जाने दूँगा! पहले बताओ, तुम कौन हो? कहाँ जा रही हो?"

मोहिनी ने उत्तर दिया, "मैं मोहिनी हूँ, जा रही हूँ, अमृत लेने के लिए। मैं अमृत लाकर इस देव को जीवित करूँगी।"

विक्रमादित्य ने आश्चर्य के साथ कहा, "तुम इस देव को

जीवित करोगी ! यह तो बड़ा पापी और अत्याचारी है। पापी और अत्याचारी को जीवन-दान कभी नहीं देना चाहिए।"

मोहिनी ने उत्तर दिया, "जानती हूँ, पर विवश हूँ। मुझे इस देव को जीवन-दान देना ही पड़ेगा। मुझे अमृत लाने से कोई भी नहीं रोक सकता।"

मोहिनी अपने को विक्रमादित्य से छुड़ाकर जाने लगी।

विक्रमादित्य ने साहस-भरे स्वर में कहा, "तुम चाहे जो भी हो, पर तुम अमृत लाने के लिए नहीं जा सकती। मैं तुम्हें नहीं जाने दूँगा—कदापि नहीं जाने दूँगा।"

विक्रमादित्य ने शीघ्र ही ताल-बैताल को याद किया।

ताल-बैताल पहुँचकर मोहिनी के सामने खड़े हो गए।

मोहिनी ताल-बैताल को देखकर डर गई। उसने विक्रमादित्य की ओर देखते हुए कहा, "क्या आप उज्जैन के राजा विक्रमादित्य तो नहीं हैं; क्योंकि मनुष्यों में वही एक ऐसे हैं जिनके संकेतों पर बड़े-बड़े देव भी नाचते हैं।"

विक्रमादित्य ने उत्तर दिया, "हाँ, मैं उज्जैन का राजा विक्रमादित्य ही हूँ, पर तुम कौन हो ? तुम्हारा सोने का-सा रंग है, चन्द्रमा-सा रूप है। तुम इस देव के शरीर में क्यों रहती हो ?"

मोहिनी ने उत्तर दिया, "महाराज, मैं पहले कैलास पर, भगवान शंकर की सेवा में रहती थी। एक दिन मेरे मन में घमण्ड पैदा हो गया। भगवान शंकर ने मुझे अपनी सेवा से अलग करके मोहिनी का रूप प्रदान किया।

"इस देव ने भगवान शंकर की बड़ी तपस्या की। उन्होंने इसकी तपस्या से प्रसन्न होकर, इसे मुझे प्रदान कर दिया।

"तब से मैं दिन-रात इसी की सेवा में रहती हूँ।

"भगवान शंकर ने मुझे इसे देते हुए कहा था, 'जब तुम्हारा स्पर्श पृथ्वी के प्रतापी राजा विक्रमादित्य से होगा, तब तुम शाप

से छूट जाओगी।'

"महाराज, आपने मेरा उद्धार कर दिया। मैं शाप से छूट गई। अब मैं फिर कैलास जा सकती हूँ, पर आप ऐसे प्रतापी और धार्मिक राजा को छोड़कर मैं अब कैलास नहीं जाऊंगी। मैं अब आपके साथ रहकर, आपकी ही सेवा करूँगी।"

विक्रमादित्य ने प्रसन्न होकर मोहिनी की सेवा स्वीकार कर ली।

विक्रमादित्य मोहिनी और लड़की के साथ उज्जैन लौट गए।

विक्रमादित्य ने एक सुन्दर और योग्य वर खोजकर उस लड़की का उसी तरह बड़ी धूमधाम से विवाह किया, जिस तरह लोग अपनी लड़की का विवाह करते हैं।

६
स्वर्ण-मोहरों की थैली

विक्रमादित्य राजसिंहासन पर आसीन थे।

राजसभा में मंत्री, सेनापति, सभासद और बड़े-बड़े नागरिक मौजूद थे। सबमें आपस में तरह-तरह की चर्चाएँ चल रही थीं।

विक्रमादित्य ने सब की ओर देखते हुए प्रश्न किया, "क्या कोई किसी ऐसे मनुष्य का नाम और पता जानता है, जो सबसे बड़ा दानी हो।"

एक ब्राह्मण ने उत्तर दिया, "हाँ महाराज, मैं एक ऐसे मनुष्य को जानता हूँ, जो बहुत बड़ा दानी है। वह एक राजा है, समुद्र के किनारे रहता है।"

विक्रमादित्य ने दूसरा प्रश्न किया, "राजा का क्या नाम है? वह समुद्र के किनारे कहाँ रहता है?"

ब्राह्मण ने उत्तर दिया, "महाराज, उस राजा का नाम स्वर्ण सिंह है। वह समुद्र के किनारे, स्वर्ण द्वीप में रहता है। वह रोज स्नान करने के बाद, एक लाख स्वर्ण-मोहरों का दान करता है।"

विक्रमादित्य ने फिर कोई प्रश्न नहीं किया। उनके मन में उस दानी राजा के दर्शन की लालसा पैदा हो उठी।

विक्रमादित्य ने दूसरे दिन ताल-वैताल को याद किया।

ताल-वैताल सेवा में उपस्थित हुए। विक्रमादित्य ने उनसे कहा, "तुम हमें समुद्र के किनारे, स्वर्ण-द्वीप में स्वर्ण सिंह राजा के नगर में ले चलो।"

ताल-वैताल ने शीघ्र ही विक्रमादित्य की आज्ञा का पालन किया, उन्हें स्वर्ण सिंह के नगर के बाहर पहुंचा दिया।

विक्रमादित्य ने ताल-वैताल से कहा, "तुम दोनों जाओ। मैं नगर में राजा के पास जा रहा हूं। आवश्यकता पड़ने पर जब याद करूंगा, तो फिर आ जाना।"

ताल-वैताल लौट गए।

विक्रमादित्य वेश बदलकर, स्वर्ण सिंह के महल के द्वार पर पहुंचे। द्वार पर सन्तरी खड़ा था। विक्रमादित्य ने सतरी से कहा, "जाओ, राजा को सूचना दे दो। मैं उनके दर्शन करना चाहता हूं।"

सतरी ने जब सूचना दी, तो राजा अपने आप ही बाहर निकल आया। उसने विक्रमादित्य की ओर देखते हुए प्रश्न किया, "तुम कौन हो? मेरे पास किसलिए आये हो?"

विक्रमादित्य ने उत्तर दिया, "महाराज, मैं विक्रमादित्य के देश का रहने वाला एक क्षत्रिय हूं। मेरा नाम विक्रम है। मैं आपके गुणों से मोहित होकर, आपके पास आया हूं। मैं आपके पास रहकर, आपकी सेवा करना चाहता हूं।"

स्वर्ण सिंह ने प्रश्न किया, "तुम वेतन क्या लोगे, काम

[stamp]

कौनसा करोगे ?"

विक्रमादित्य ने उत्तर दिया, "महाराज, मैं रोज, चार हजार रुपए लूंगा। जो काम कोई नहीं कर सकेगा, मैं उसे पूरा करूँगा।"

राजा ने विक्रमादित्य को अपनी सेवा में रख लिया।

विक्रमादित्य को प्रतिदिन संध्या के बाद चार हजार रुपए मिल जाते थे। वे कुछ अपने खाने-पीने पर खर्च करते थे, शेष सब दान-पुण्य में दे डालते थे।

पर काम कुछ भी नहीं करना पड़ता था, क्योंकि कोई ऐसा काम सामने आता ही नहीं था, जिसे कोई न कर पाता हो।

उधर स्वर्ण सिंह प्रतिदिन स्नान करने के बाद एक लाख स्वर्ण-मोहरें दान में दिया करता था। विक्रमादित्य बड़े ध्यान से उसके दान की क्रिया को देखा करते थे।

इसी प्रकार कई मास बीत गए।

एक दिन विक्रमादित्य ने सोचा, जो राजा प्रतिदिन एक लाख स्वर्ण-मोहरों का दान करता है, वह काम कौनसा करता है? आखिर, वे स्वर्ण-मोहरें आती हैं तो कहाँ से आती हैं? छिपकर देखना चाहिए, राजा इन स्वर्ण-मोहरों के लिए कौनसा काम करता है ?"

विक्रमादित्य बड़ी होशियारी से, छिपकर स्वर्ण सिंह की गतिविधि पर निगाह रखने लगे।

रात का समय था। विक्रमादित्य स्वर्ण सिंह की गतिविधि का पता लगाने के लिए, राजमहल के पास छिपे हुए थे।

विक्रमादित्य को यह देखकर बड़ा आश्चर्य हुआ कि राजा अकेला ही अपने राजमहल से निकलकर कहीं जा रहा है।

विक्रमादित्य चुपचाप राजा के पीछे-पीछे चलने लगे।

राजा वन में एक देवी के मन्दिर में पहुँचा। मन्दिर में आग

पर बहुत बड़ा कड़ाह चढ़ा हुआ था। ब्रह्मा जी उस कड़ाह में घी डालकर औटा रहे थे।

राजा ने मन्दिर में पहुँचकर तालाब में स्नान किया। फिर वह उस कड़ाह में कूद पड़ा, जिसमें घी औटाया जा रहा था।

राजा का शरीर जल-भुन गया। शीघ्र ही चौंसठ योगिनियाँ दौड़-दौड़कर आ पहुँचीं। सब राजा के शरीर के मांस को नोच-नोचकर खाने लगीं।

कुछ क्षणों बाद, राजा के शरीर में हड्डियों के ढाँचे को छोड़कर और कुछ नहीं रह गया।

योगिनियाँ जब चली गईं, तो देवी हाथ में अमृत का कलश लेकर प्रकट हुईं। देवी ने 'राम-राम' कहते हुए अमृत राजा के कंकाल पर छिड़क दिया।

राजा उठ बैठा। उसका शरीर फिर पहले के समान हो गया। उसने बड़े आदर से देवी को प्रणाम किया। देवी ने उसे एक लाख स्वर्ण-मोहरें प्रदान कीं।

राजा मोहरें लेकर चला गया।

विक्रमादित्य ने छिपकर इस अनोखे कृत्य को देखा। वे यह समझ गए कि, राजा को किस प्रकार प्रतिदिन एक लाख स्वर्ण-मोहरें मिलती हैं!

राजा के चले जाने पर, विक्रमादित्य भी जाकर उस कड़ाह में कूद पड़े। पहले की ही भाँति फिर योगिनियाँ आईं, और मांस खाकर चली गईं। देवी ने फिर प्रकट होकर अमृत छिड़का और विक्रमादित्य को एक लाख स्वर्ण-मोहरें प्रदान कीं।

पर विक्रमादित्य एक लाख स्वर्ण-मोहरें पाने पर गए नहीं, बल्कि वे बार-बार कड़ाह में कूदने लगे, और बार-बार देवी से एक लाख स्वर्ण-मोहरें पाने लगे।

विक्रमादित्य के बार-बार कड़ाह में कूदने से देवी उन पर

अधिक प्रसन्न हुई। उन्होंने विक्रमादित्य से कहा, "मैं तुम्हारे त्याग और साहस से बहुत प्रसन्न हूँ। तुम अपनी इच्छानुसार कुछ भी मुझसे माँग सकते हो।"

विक्रमादित्य ने कहा, "यदि आप मुझ पर प्रसन्न हैं, तो दया करके मुझे वह थैली दे दीजिए, जिसमें से निकालकर, आप प्रतिदिन राजा को एक लाख स्वर्ण-मोहरें देती हैं।"

देवी ने अपनी थैली विक्रमादित्य को दे दी। वे उस थैली को लेकर नगर में लौट गए।

दूसरे दिन जब आधी रात हुई, तो राजा अपने नियम के अनुसार फिर वन में गया, पर उसे यह देखकर बड़ा आश्चर्य हुआ कि, न तो मन्दिर है, न तालाब है, और न मन्दिर में कड़ाह चढ़ा है।

राजा का हृदय दुख से मथ उठा। उसने बड़ी चीख-पुकार की, पर उसे साँय-साँय को छोड़कर कुछ भी जवाब नहीं मिला।

राजा अपने महल में जाकर, पलंग पर पड़ रहा। उसका बाहर निकलना बंद हो गया। उसने खाना-पीना भी छोड़ दिया। उसका प्रतिदिन दान करना बंद हो गया। राज-काज में भी उसकी बिलकुल रुचि नहीं रही।

मंत्री, सेनापति दरबारी—सभी घबड़ा उठे, सभी राजा के पास जाने लगे। उनसे उसके जी का हाल-चाल पूछने लगे, पर राजा किसी से भी अपने जी का हाल नहीं बताता था। वह सबको टाल दिया करता था।

बड़े-बड़े वैद्य और हकीम भी राजा के पास पहुँचे, पर उनकी भी समझ में नहीं आया कि, राजा को कौनसा रोग है!

आखिर, अवसर पाकर विक्रमादित्य भी राजा के पास गए। उन्होंने राजा से कहा, "महाराज, आपको कौनसा दुख है? आपके दुख को देखकर सारी प्रजा आकुल हो रही है। कृपया,

अपने मन के दुख को प्रकट कीजिए !"

पर राजा ने विक्रमादित्य को टाल दिया।

पर विक्रमादित्य चुप नहीं हुए। उन्होंने राजा से फिर कहा, "महाराज, जब मैं नौकर रखा गया था, तो मैंने कहा था, जो काम कोई नहीं कर सकेगा, उस काम को मैं करूँगा। अब वह अवसर उपस्थित हुआ है। आपके मन में जो दुख है, उसे कोई भी दूर नहीं कर पा रहा है। कृपया मुझे बताइए। आपके दुख को मैं दूर करूँगा।"

राजा ने आशा-भरी दृष्टि से विक्रमादित्य की ओर देखा। विक्रमादित्य ने फिर कहा, "मैं सच कह रहा हूँ महाराज ! आप अपने दुख को मुझ पर प्रकट कीजिए। मैं अवश्य आपके दुख को दूर करूँगा।"

राजा ने प्रतिदिन एक लाख स्वर्ण-मोहरों के मिलने की कहानी विक्रमादित्य को सुना दी। उसने बड़े ही दुख के साथ विक्रमादित्य को बताया कि, अब उस जगह न तो मन्दिर है और न देवी की मूर्ति है।

विक्रमादित्य ने राजा को ढाढस बंधाया। उन्होंने राजा से कहा, "महाराज, आप बिलकुल चिन्ता न करें। आप सवेरे उठकर, नहा-धोकर दान के सिंहासन पर बैठें। आपका दान उसी तरह चलेगा, जिस तरह पहले चला करता था।"

यद्यपि राजा के मन में आगा-पीछा चल रहा था, फिर भी वह दूसरे दिन नहा-धोकर, दान के सिंहासन पर जा बैठा।

विक्रमादित्य ने राजा के पास पहुँचकर, उसे देवी की थैली प्रदान की। उन्होंने राजा से कहा, "महाराज, आप प्रतिदिन इस थैली के भीतर से एक लाख स्वर्ण-मोहरें निकाल सकते हैं। यह थैली कभी खाली नहीं होगी।"

राजा ने थैली में हाथ डालकर देखा, तो एक लाख स्वर्ण-

थैली में हाथ डाला, ...

।

ा।

जा से कहा, "महाराज, अब आप अपनी
रा काम समाप्त हो गया। अब मैं अपने
प्रजा मेरा रास्ता देख रही होगी।"
ाश्चर्य हुआ। उसने विक्रमादित्य की ओर
ा! क्या तुम किसी देश के राजा हो?"
कहा, "हाँ महाराज, मैं उज्जैन का राजा
आपके दान-यश को सुनकर आपके दर्शन

क्रमादित्य के पैरों पर गिर पड़ा। उसने कहा,
ने आपके संबंध में जो कुछ सुना था, वह सब
र हुआ। आप सचमुच महान् हैं, महान् से भी

क्रमादित्य महान् थे, महान् से भी अति महान् थे।
बीत चुके हैं, पर उसके यश की पताका आज भी
धरती पर ही नहीं, आकाश पर भी उड़ रही है।

७

बटुए का दान

अपनी राजसभा में बैठे हुए थे।
रह की चर्चाएँ चल रही थीं। उन्हीं चर्चाओं के सि
कार की भी चर्चा चल पड़ी। विक्रमादित्य ने कहा, "कल
र खेलने चलेंगे। हमारे साथ सभी दरबारियों को भी

शिकार में चलना पड़ेगा। जो शिकार में सबसे बढ़कर बहादुरी दिखायेगा, उसे पुरस्कार दिया जायेगा।"

रात में ही शिकार की सारी तैयारियाँ पूरी कर ली गईं।

दूसरे दिन, सवेरा होने पर विक्रमादित्य घोड़े पर सवार होकर, शिकार के लिए चल पड़े। उनके साथ उनके सभी दरबारी थे। दरबारी भी घोड़े पर सवार थे। सब तरह-तरह के हथियार लिये हुए थे।

वन में पहुँचकर सब अपना-अपना करतब दिखाने लगे। किसी ने मृग के पीछे अपना घोड़ा दौड़ाया, तो किसी ने सूकर के। किसी ने बाघ का पीछा किया, तो किसी ने चीते का। कोई किसी पक्षी के पीछे दौड़ पड़ा, तो किसी ने खरगोश का पीछा किया। विक्रमादित्य एक स्थान में बैठकर सबका करतब देखने लगे।

सहसा विक्रमादित्य की एक हरिण पर दृष्टि पड़ी। उसके शरीर पर रंगदार चित्तियाँ पड़ी थीं। ऐसा लग रहा था, मानो उसने कई रंगों की ओढ़नी अपने ऊपर डाल रखी हो।

विक्रमादित्य ने वैसा सुन्दर मृग कभी नहीं देखा था। उन्होंने उस मृग के पीछे अपना घोड़ा दौड़ा दिया।

मृग चौकड़ियाँ भरने लगा। विक्रमादित्य उसके पीछे-पीछे अपने घोड़े को भगाने लगे।

मृग चौकड़ियाँ भरते-भरते बहुत दूर जा चुका था। विक्रमादित्य भी उसका पीछा करते-करते बहुत दूर निकल गए। शाम हो गई। सूर्य डूब गया। मृग हाथ न लगा।

पतला-पतला अँधेरा हो रहा था। चारों ओर जंगल। जंगल में विक्रमादित्य और उनके घोड़े को छोड़कर और कोई नहीं था। दोनों थके तो थे ही, प्यास से आकुल थे।

विक्रमादित्य घोड़े से उतर पड़े। वे घोड़े की लगाम पकड़कर, पानी की खोज में पैदल ही चल पड़े।

विक्रमादित्य एक नदी के किनारे पहुंचे। वे घोड़े को पानी पिलाकर, स्वयं भी नदी में झुककर पानी पीने लगे।

इसी समय उनकी दृष्टि एक नाव पर पड़ी, जो नदी में धीरे-धीरे चल रही थी। नाव पर दो मनुष्य बैठे हुए थे। उनमें एक बकरे को लेकर आपस में विवाद कर रहे थे।

वैताल कहता था, बकरा उसका है। वह आज उसी को खाकर अपनी क्षुधा शान्त करेगा। और योगी कहता था, नहीं, बकरा उसका है। वह देवी को बकरे की बलि देकर, तंत्र-साधना करेगा।

दोनों आपस में रह-रहकर उलझ रहे थे, पर दोनों में किसी तरह भी समझौता होता हुआ नहीं दिखाई पड़ रहा था।

विक्रमादित्य पानी पीने के बाद खड़े हुए, खड़े होकर दोनों का उलझना देखने लगे।

योगी और वैताल में जब किसी तरह निपटारा नहीं हुआ, तो दोनों ने किसी तीसरे से निपटारा कराने का फैसला किया, पर वहां तीसरा कौन था, जो उनके विवाद का निपटारा करता!

सहसा दोनों की दृष्टि विक्रमादित्य पर पड़ी। वे अपने घोड़े के साथ, किनारे पर खड़े होकर उन दोनों की ओर देख रहे थे।

दोनों नाव को किनारे ले गए। उन्होंने विक्रमादित्य से निवेदन किया, "तुम बड़े तेजस्वी जान पड़ते हो! हम दोनों के विवाद का निपटारा कर दो, तो बड़ी कृपा हो।"

विक्रमादित्य ने उत्तर दिया, "अवश्य, हम तुम दोनों के विवाद का निपटारा कर देंगे, पर यह तो बताओ, तुम दोनों विवाद किस बात के लिए है?"

वैताल ने कहा, "विवाद इस बकरे के लिए है। यह मे भोजन है। मैं इसे खाकर अपनी भूख शान्त करना चाहता हूं, यह योगी इस बकरे को मुझसे छीनना चाहता है।"

इस बकरे को मुझसे छीनना चाहता है।"

योगी ने कहा, "नही, यह बकरा मेरा है। मैं इस बकरे की बलि देकर, तंत्र-साधना करूंगा। यह वैताल मेरी तन्त्र-साधना में विघ्न डाल रहा है।"

दोनों की बात सुनकर विक्रमादित्य ने कहा, "यदि हम तुम दोनो के विवाद का निपटारा कर दें, तो तुम दोनो हमे क्या दोगे ?"

वैताल ने कहा, "यदि तुम विवाद का फैसला कर दोगे तो मैं तुम्हे मोहिनी तिलक दूंगा।"

वैताल ने मोहिनी तिलक की डिबिया निकालकर विक्रमादित्य को दे दी। उसने कहा, "तुम इस तिलक को अपने मस्तक पर लगाकर जहाँ भी जाओगे, तुम्हारी विजय होगी।"

योगी ने कहा, "और मैं तुम्हे एक बटुआ दूंगा।"

योगी ने बटुआ निकालकर विक्रमादित्य को दे दिया। उसने कहा, "यह बटुआ बड़ा करामाती है। तुम इसमें से चाहे जितना भी धन बार-बार निकाल सकते हो! यह कभी खाली नहीं होगा।"

विक्रमादित्य ने बटुआ और मोहिनी तिलक की डिबिया अपने पास रख ली। उन्होंने योगी और वैताल से कहा, "तुम दोनो व्यर्थ ही आपस मे झगड़ रहे हो! बकरा एक है, और तुम दो! मेरे घोड़े को भी बकरे के साथ मिला लो। वैताल को भूख लगी है—वह मेरे घोड़े का मांस खाकर अपनी भूख शान्त करे। योगी तन्त्र-साधना करना चाहता है—वह बकरे की बलि देकर तन्त्र-साधना करे।"

योगी और वैताल दोनो ने विक्रमादित्य के फैसले को स्वीकार कर लिया।

विक्रमादित्य घोड़ा वैताल को देकर पैदल ही चल पड़े।

अँधेरी रात ! जंगली रास्ता ! रास्ते में कंकड़-पत्थर, कुश-काँटे ! रह-रहकर विक्रमादित्य को ठोकर लग जाती थी, रह-रहकर उनके पैरों में काँटे चुभ जाते थे, पर फिर भी वे चलते रहे, रात-भर पैदल चलते रहे।

सवेरा हो रहा था। सूर्य की किरणें निकल रही थीं। विक्रमादित्य अपनी राजधानी के निकट पहुँच गए थे।

नगर की ओर से एक वृद्ध भिखारी आ रहा था। वह बड़ा दुखी दिखाई पड़ रहा था। विक्रमादित्य को देखकर उसने उन्हें बड़े आदर से प्रणाम किया।

विक्रमादित्य ने उससे प्रश्न किया, "तुम कौन हो? सवेरे-सवेरे कहाँ जा रहे हो?"

वृद्ध ने उत्तर दिया, "महाराज, मैं उज्जैन का एक गरीब नागरिक हूँ। आज मेरी कन्या का विवाह है, पर कन्या को देने के लिए मेरे पास कुछ नहीं है। अत मैं भिक्षा माँगने जा रहा हूँ। भिक्षा में जो कुछ मिलेगा, उसी से मैं अपनी कन्या का विवाह करूँगा।

विक्रमादित्य के हृदय में दया उमड़ उठी। उन्होंने योगी का बटुआ निकालकर वृद्ध को दे दिया। उन्होंने वृद्ध से कहा, "बाबा, तुम इस बटुए में से चाहे जितना धन, जितनी बार चाहो निकाल सकते हो! यह कभी खाली नहीं होगा।"

वृद्ध ने बटुआ हाथ में लेकर उसके भीतर हाथ डाला, तो उसकी मुट्ठी अशर्फियों से भर गई।

वृद्ध प्रसन्न हो उठा। वह विक्रमादित्य को आशीषें देता हुआ अपने घर लौट गया।

वृद्ध की उस प्रसन्नता को देखकर विक्रमादित्य को इतनी प्रसन्नता हुई, मानो उनका स्वर्ग पर अधिकार हो गया हो।

धन्य थे विक्रमादित्य ! उनके समान पर-दुख-कातर

कदाचित् ही कोई और हुआ हो !

८

विश्वासघात का फल

विक्रमादित्य अपनी राजसभा में राजसिंहासन पर आसीन थे। मंत्री, सेनापति, विद्वान, नागरिक—सभी अपने-अपने स्थान पर बैठे हुए थे। राज-काज की चर्चाएँ चल रही थीं।

एक विद्वान् ब्राह्मण विक्रमादित्य के सामने उपस्थित हुआ। उसने हाथ जोड़कर निवेदन किया, "महाराज, मैंने एक श्लोक बनाया है। मैं उसे सुनाने के लिए ही आपके पास आया हूँ।"

विक्रमादित्य ने श्लोक सुनाने की आज्ञा दे दी।

ब्राह्मण ने विक्रमादित्य को श्लोक सुना दिया। श्लोक का तात्पर्य था—जो मनुष्य अपने मित्र से द्रोह और विश्वासघात करता है, उसे करोड़ों वर्षों तक नरक का दुख भोगना पड़ता है।

विक्रमादित्य श्लोक सुनकर बहुत प्रसन्न हुए। उन्होंने ब्राह्मण को एक लाख रुपये देने की आज्ञा प्रदान की।

ब्राह्मण जब पुरस्कार की राशि लेकर जाने लगा, तो विक्रमादित्य ने कहा, "ब्राह्मण श्रेष्ठ ! तुम्हारा श्लोक है तो बहुत अच्छा, पर मैं इस बात को कैसे मानूँ कि, मित्र से द्रोह और विश्वासघात करने वाले को करोड़ों वर्षों तक नरक का दुख भोगना पड़ता है।"

ब्राह्मण रुक गया। उसने कहा, "महाराज, मैं आपको एक कहानी सुना रहा हूँ, जिसे सुनकर आपको यह मानना ही पड़ेगा कि मित्र के साथ द्रोह और विश्वासघात करने वाले को सचमुच करोड़ों वर्षों तक नरक का दुख भोगना पड़ता है।"

ब्राह्मण विक्रमादित्य से आज्ञा लेकर, उन्हें कहानी सुनाने लगा—

एक देश में एक राजा राज्य करता था। राजा बड़ा मूर्ख था। मूर्ख होने के कारण वह बडा शक्की भी था। दूसरों की तो कोई बात ही नहीं, वह स्वयं अपने-आप पर भी सन्देह करता था।

राजा के कुटुम्ब में वह, उसकी रानी और उसका जवान पुत्र था। रानी बड़ी सुन्दर थी। राजा तन-मन से उसकी सुन्दरता पर निछावर था।

राजा जहाँ भी जाता था, रानी को अपने साथ ले जाता था। वह जब राज-काज के लिए राजसभा में राजसिंहासन पर बैठता, तो उस समय भी रानी उसकी बगल में होती थी।

राजा की इस मोहासक्ति को देखकर राज्य में उसक बदनामी होने लगी। लोग आम तौर से कहने लगे, 'राजा रा की सुन्दरता पर इतना मोहित है कि, उसे प्रजा की भी सुध न रहती। ऐसे राजा का तो शीघ्र से शीघ्र अन्त हो जाना अच है।'

राजा की बदनामी मंत्री के कानों में भी पडी। मंत्री दुखी हुआ। वह सोचने लगा, ऐसा कौनसा उपाय किया जिससे राजा रानी को सदा अपने पास रखना छोड़ दे !

एक दिन मंत्री ने राजा से निवेदन किया, 'महाराज, ह महारानी बहुत सुन्दर है। आप उन्हें सदा अपने पास रखत कहीं ऐसा न हो कि, कोई दुष्ट उनकी सुन्दरता को नज दे। इससे अच्छा तो यह है कि, आप महारानी के बदले उनकी तस्वीर अपने पास रखे। आप महारानी को सदा भी रहेंगे और उनकी सुन्दरता को नजर लगने का डर रहेगा।'

मंत्री की बात राजा को जँच गई। उसने रानी का एक सुन्दर चित्र बनवाने की आज्ञा दे दी।

मंत्री ने एक बहुत बड़े और कुशल चित्रकार को चित्र बनाने का कार्य सुपुर्द किया।

चित्रकार रानी को एक बार नहीं अनेक बार देख चुका था, क्योंकि रानी राजा के साथ बराबर बाहर आया-जाया करती थी।

चित्रकार अपने कार्य में लग गया।

कई महीने तक बराबर काम करते रहने के बाद चित्रकार ने अपना काम पूरा किया। उसने रानी का एक बड़ा ही सुन्दर चित्र तैयार किया। चित्रकार ने अपनी कला से चित्र में जान-सी डाल दी थी।

चित्रकार रानी का चित्र राजा के पास ले गया। राजा उस चित्र को देखकर बाग-बाग हो उठा।

पर राजा शक्की तो था ही! उसके मन में सन्देह भी पैदा हो उठा। वह चित्र को देखकर मन ही मन सोचने लगा, किस तरह चित्रकार ने, रानी का इतना सुन्दर चित्र तैयार किया? अवश्य रानी और चित्रकार दोनों आपस में मिलते हैं।

राजा चित्रकार से जल-भुन उठा। उसने चित्रकार को पारिश्रमिक और पुरस्कार देने के स्थान पर आदेश दिया—'चित्रकार की आँखें निकलवा ली जाएं।'

बेचारा चित्रकार करता तो क्या करता? राजा की आज्ञा से पकड़ लिया गया।

पर मंत्री ऊँचे विचारों का था। वह राजा की दुर्बलताओं और उसके शक्की स्वभाव से परिचित था। उसने बड़ी बुद्धिमानी और अपने प्रभाव से चित्रकार को बचा लिया।

मंत्री ने राजा के पास हरिण की आँखें भेजकर, उसे सन्तोष

दिला दिया कि, चित्रकार की आँखें निकाल ली गईं।

कई महीने बीत गए। एक दिन राजकुमार वन में शिकार खेलने गया। जैसा बाप, वैसा ही बेटा। बाप की तरह उसकी भी रग-रग में कायरता और मूर्खता समायी हुई थी।

राजकुमार जब वन में पहुँचा, तो उसे एक शेर दिखाई पड़ा। शेर को देखते ही उसके प्राण कूच कर गए। वह डरकर एक पेड़ पर चढ़ गया।

संयोग की बात; पेड़ पर पहले से ही एक रीछ शेर से डरकर बैठा हुआ था। शेर उस पेड़ के नीचे आकर बैठ गया और दोनों के उतरने की प्रतीक्षा करने लगा।

दिन बीत गया, शाम हो गई। रात भी हो आई। पर शेर पेड़ के नीचे से नहीं गया। रीछ और राजकुमार दोनों पेड़ पर ही टँगे रहे।

रात में रीछ ने राजकुमार से कहा, 'शेर हम दोनों का शत्रु है। हम दोनों को रात पेड़ पर ही काटनी पड़ेगी। बिना सोए कैसे काम चलेगा? उधर शेर पर भी निगाह रखनी होगी। इसलिए आधी रात तक तुम सोओ और मैं पहरा दूँ, और उसके बाद आधी रात तक मैं सोऊँ, तुम पहरा दो।'

राजकुमार ने रीछ की बात मान ली।

पहली आधी रात तक के लिए राजकुमार सोने लगा। रीछ पेड़ की डाल पर बैठकर पहरा देने लगा।

जब राजकुमार गाढ़ी नींद में खुर्राटे भरने लगा, तो पेड़ के नीचे से शेर बोला, 'रीछ, राजकुमार सो गया है। आओ हम दोनों इस अवसर से लाभ उठायें, क्योंकि राजकुमार मनुष्य है, और हम तुम जंगल के जीव हैं। राजकुमार हम दोनों का शत्रु है। इसलिए तुम राजकुमार को नीचे ढकेल दो और स्वयं भी [illegible] जाओ। हम दोनों राजकुमार को खाकर अपनी भूख

मिटायें।

पर रीछ ने शेर की बात नहीं मानी। उसने कहा, 'राजकुमार, मुझ पर विश्वास करके सो रहा है। वह चाहे जो हो, पर इस समय मेरा मित्र है। मैं मित्र के साथ विश्वासघात नहीं कर सकता।'

शेर करता तो क्या करता? चुप हो गया।

पहली आधी रात खतम होने पर रीछ सोने लगा, और राजकुमार जागकर पहरा देने लगा।

जब रीछ गाढ़ी नींद में सो गया, तो शेर ने पेड़ के नीचे से राजकुमार से कहा, 'राजकुमार, मैं और रीछ दोनों तुम्हारे शत्रु हैं। यदि तुम मेरी बात मान लो, तो हम दोनों से बच सकते हो।'

राजकुमार ने पूछा, 'कहो, क्या है तुम्हारी बात?'

शेर ने कहा, 'तुम रीछ को नीचे ढकेल दो। मैं उसे खाकर चला जाऊंगा। जब मैं चला जाऊं, तो तुम पेड़ से नीचे उतरकर सही सलामत अपने घर चले जाना।'

राजकुमार को शेर की बात जँच गई। उसने रीछ को नीचे ढकेल दिया।

पर राजकुमार ने ज्यों ही रीछ को नीचे ढकेला, उसकी आंख खुल गई। वह पेड़ की डाल पकड़कर ऊपर ही रह गया।

राजकुमार के विश्वासघात से रीछ क्रुद्ध तो हुआ, पर उसने अपने क्रोध को उभड़ने नहीं दिया। उसने राजकुमार को फटकारते हुए कहा, 'दुष्ट, मैंने जानवर होकर तेरी रक्षा की, और तूने मनुष्य होकर मेरे साथ विश्वासघात किया! यदि मैं चाहूं, तो तुझे तेरे पाप की भरपूर सजा दे सकता हूं।'

राजकुमार डर से कांपने लगा। उसने समझा, रीछ उसे अवश्य मार डालेगा, पर रीछ शांत था। वह बड़ी घृणा-भरी

दृष्टि से राजकुमार को देख रहा था।

सवेरा हो रहा था। सूर्य की रोशनी को देखकर शेर पेड़ के नीचे से चला गया। रीछ ने राजकुमार की ओर घृणा के साथ देखते हुए कहा, 'पर दुष्ट, तेरे ऐसे पापी मनुष्य को मैं खाना भी नहीं पसन्द करता।'

रीछ राजकुमार के कानों में पेशाब करके चला गया।

राजकुमार पेड़ से नीचे उतरा, पर उसका बुरा हाल था। वह बिलकुल पागल-सा हो गया। न तो कुछ बोलता था, और न उसे कुछ सुनाई ही पड़ता था।

राजकुमार किसी तरह अपने महल में गया। उसकी बुरी दशा देखकर उसका बाप चिन्तित हो उठा। एक ही लड़का था। बड़े-बड़े हकीमों और वैद्यों को बुलाकर इलाज कराने लगा, पर कुछ भी फायदा नहीं हुआ। राजकुमार की हालत ज्यों की त्यों बनी रही।

राजा निराश हो उठा। आखिर उसने मंत्री से प्रार्थना कि, मंत्रीजी, आप कुछ उपाय करें, नहीं तो मुझे लड़के से हाथ धोना पड़ेगा।'

मंत्री ने किसी तरह यह पता लगा लिया था कि, वन में राजकुमार के साथ कैसी घटना घटी थी! किस तरह वह शेर से डरकर पेड़ पर चढ़ा था, किस तरह पेड़ पर उसमें और रीछ में मित्रता हुई थी, किस तरह उसने रीछ के साथ विश्वासघात किया था, और किस तरह रीछ ने उसके कानों में पेशाब कर दिया था।

राजा की प्रार्थना पर मंत्री ने मन ही मन सोच-विचार किया। उसने सोचा, यह अच्छा अवसर है, जब राजा को उसकी मूर्खताओं से अलग किया जा सकता है!'

मंत्री ने राजा से कहा—'महाराज, अब वैद्यों-हकीमों से तो

कुछ काम नहीं चलेगा। अब तो एक ही उपाय है, तंत्र-मंत्र का सहारा लिया जाय। मेरी पुत्र-वधू तंत्र-मंत्र की विद्या में बड़ी चतुर है। यदि आप आज्ञा दें तो मैं अपनी पुत्र-वधू को लाकर राजकुमार को दिखाऊँ, पर मेरी पुत्र-वधू राजकुमार के सामने नहीं जायेगी। वह पर्दे की ओट से राजकुमार को देखेगी, उनके रोग को दूर करने का उपाय करेगी।'

राजा ने मंत्री की बात मान ली।

मंत्री ने उस चित्रकार को बुलवाया, राजा ने जिसकी आँखें निकालने की आज्ञा दी थी।

मंत्री चित्रकार को स्त्री-वेश में सजाकर, अपने पुत्र की वधू के रूप में महल में ले गया। उसने चित्रकार को वह पूरी घटना बता दी थी, जो वन में राजकुमार के साथ घटी थी।

महल में चित्रकार रूपी मंत्री की पुत्र-वधू को, एक पर्दे के भीतर रखा गया। पर्दे के बाहर राजकुमार, राजा, मंत्री और रानी आदि लोग थे।

पर्दे के भीतर से मंत्री की पुत्र-वधू ने कहा, 'राजकुमार, तुम्हें जो रोग है, वह रोग नहीं, मित्र के साथ धोखा करने का पाप है। तुमने अपने मित्र रीछ के साथ विश्वासघात करके बहुत बड़ा पाप किया है। जब तक तुम सबके सामने अपने पाप को स्वीकार नहीं करोगे, कभी अच्छे न होगे।'

राजकुमार बोल उठा, 'हाँ, यह सच है, बिल्कुल सच है। मैंने अपने मित्र रीछ को धोखा दिया था। मैं पापी हूँ, बहुत बड़ा पापी हूँ।'

राजकुमार के बोलने और सचेत होने से राजा के हृदय में आनन्द का सागर लहरा उठा। साथ ही उनके मन में यह सवाल भी पैदा हो उठा, मंत्रीजी की पुत्र-वधू ने यह सब कैसे जाना,

राजा बोल उठा, 'पर बेटी, यह तुमने कैसे जाना कि, राज-

कुमार ने वन में अपने मित्र रीछ को धोखा दिया था ?'

चित्रकार रूपी पुत्र-वधू ने पर्दे के भीतर से उत्तर दिया, 'महाराज, मुझ पर सरस्वती की कृपा है। मैं सरस्वती की कृपा से सब कुछ जान लेती हूँ—सब कुछ देख लेती हूँ। किसी ऐसे आदमी का चित्र भी ठीक-ठीक बना देती हूँ, जिसे मैंने कभी नहीं देखा हो या दूर से देखा हो।'

राजा मंत्री की पुत्र-वधू पर प्रसन्न हो उठा। उसने उसे देखने के लिए पर्दा उठा दिया। उसने पर्दा उठाकर देखा, तो वह मंत्री की पुत्र-वधू के वेश में चित्रकार था।

राजा चित्रकार और मंत्री की चतुराई पर प्रसन्न हो उठा। उसने दोनों को बहुत बड़ा पुरस्कार दिया, साथ ही अपनी भूल पर पश्चाताप भी किया।

ब्राह्मण ने कहानी को समाप्त करके कहा, "महाराज, जिस प्रकार चित्रकार को सजा देकर मूर्ख राजा को पछताना पड़ा, और जिस प्रकार रीछ के साथ विश्वासघात करके राजकुमार को दुख भोगना पड़ा, उसी प्रकार जो लोग मित्र, स्नेही और हितैषी के साथ विश्वासघात करते है, उन्हें भी पछताना पड़ता है, दुख भोगना पड़ता है।"

विक्रमादित्य ब्राह्मण पर और भी अधिक प्रसन्न हुए। उन्होंने ब्राह्मण को अधिक से अधिक धन देकर, उसे बड़े आदर के साथ विदा किया।

६

बहुमूल्य उड़नखटोला

उज्जैन में एक बहुत बड़ा सेठ रहता था।

सेठ बड़ा धनी था। सारे नगर में उसका नाम था। लोग

उसे नगर-सेठ कहते थे। स्वयं विक्रमादित्य भी उसका आदर करते थे।

सेठ का एक लड़का था। लड़का बडा रूपवान और गुणवान था। वह बुद्धिमान तो था ही, माता-पिता का बडा भक्त भी था।

लड़का जब विवाह के योग्य हुआ, तो सेठ ने उसका विवाह करने का निश्चय किया। उसने सोचा, 'उसके लडके का विवाह किसी ऐसी लडकी के साथ होना चाहिए, जो उसी के समान सुन्दर और गुणवती हो।'

पर ऐसी सुन्दर और गुणवती लड़की मिले तो किस प्रकार मिले?

सेठ ने अपने पुरोहित को बुलाकर उससे कहा, "पुरोहितजी, मैं अपने लड़के का विवाह किसी ऐसी लडकी के साथ करना चाहता हूँ, जो मेरे लड़के के समान ही सुन्दर हो, गुणवान हो। आप किसी ऐसी लड़की का पता लगाएँ। देश मे, विदेश मे, जहाँ भी ऐसी लड़की मिले, आप ढूंढे। जितना भी धन खर्च हो खर्च करें, पर ऐसी लड़की का पता अवश्य लगायें।"

पुरोहित तो पुरोहित था ही। वह सेठ से रुपया-पैसा लेकर सुन्दर और गुणवती लड़की की खोज मे निकल पडा।

पुरोहित गाँव-गाँव, नगर-नगर घूमने लगा पर उसे आस-पास कही कोई ऐसी लडकी नही मिली।

जब आस-पास कोई लडकी नही मिली, तब पुरोहित जहाज पर सवार होकर समुद्र के उस पार गया। आखिर समुद्र के उस पार, एक नगर में उसे सुन्दर और गुणवान लडकी का पता चला।

उस लडकी का भी पिता एक बहुत बडा सेठ था। वह भी अपनी सुन्दर और गुणवती लडकी का विवाह किसी ऐसे लड़के के

साथ करना चाहता था, जो उसी के समान सुन्दर और गुणवान हो। वह भी अपनी लडकी के विवाह के लिए वर खोज रहा था।

पुरोहित सेठ के घर का पता लगा कर, उसके पास पहुँचा। उसने सेठ से मिलकर उसे अपना मंतव्य बताया।

सेठ बड़ा प्रसन्न हुआ। उसने पुरोहित को बडे आदर से अपने घर टिकाया, उसकी बडी आवभगत की।

सेठ ने अपनी लड़की पुरोहित को दिखा दी। लड़की सचमुच देवकन्या थी। पुरोहित ने उसे पसन्द कर लिया।

पुरोहित ने सेठ से कहा, "मैंने तो आपकी कन्या पसन्द कर ली। अब आप अपने पुरोहित को मेरे साथ उज्जैन भेज दीजिए। वह चलकर लड़के को देख ले। यदि उसे लड़का पसन्द आ जाए, तो वह विवाह पक्का कर दे।"

सेठ तैयार हो गया। उसने अपने पुरोहित को उज्जैन भेज दिया।

पुरोहित ने उज्जैन जाकर लडके को देखा। लड़का क्या था, चांद का टुकडा था। पुरोहित ने विवाह पक्का कर दिया।

पर विवाह के लिए जो मुहूर्त निकला, वह बहुत निकट था। अर्थात् केवल चार-पाँच दिन बाद ही का।

पुरोहित तो विवाह पक्का करके चला गया, पर नगर-सेठ चिन्ता मे पड़ गया। वह सोचने लगा, वह चार दिन में किस तरह विवाह का प्रबन्ध कर सकता है। मान लो, विवाह का प्रबन्ध हो भी जाय, तो इतनी दूर बारात लेकर किस प्रकार ठीक समय पर पहुँचा जा सकता है?

पर विवाह पक्का कर लिया गया था। नगर-सेठ के सामने अब प्रश्न लडके के विवाह का नहीं, उसकी प्रतिष्ठा का था। उसने सोचा, यदि वह ठीक समय पर बारात सजाकर लड़की के दरवाजे पर न पहुँचेगा, तो लोग उसकी हँसी उड़ायेंगे। केवल

उसी की हँसी नहीं उड़ायेंगे, उसके समाज और उसके देश की भी हँसी उड़ायेंगे।"

नगर-सेठ विक्रमादित्य की सेवा में उपस्थित हुआ, क्योंकि वह जानता था, विक्रमादित्य को छोड़कर कोई दूसरा ऐसा नहीं है, जो उसकी समस्या को हल कर सके।

नगर-सेठ ने बड़े दुख-भरे शब्दों में विक्रमादित्य को अपने लड़के के विवाह की कहानी सुनाई।

विक्रमादित्य ने बड़ी ही सहानुभूति के साथ कहा "सेठजी, आप बिलकुल चिन्ता न करें। आप मेरी प्रजा हैं। आपकी इज्जत मेरी इज्जत है। मेरे पास एक विमान है, जिसे उड़नखटोला कहते हैं। आप उस विमान पर बैठकर, ठीक समय पर विवाह के लिए लड़की के पिता के दरवाजे पर पहुँच सकते हैं।"

विक्रमादित्य ने अपना विमान नगर-सेठ को दे दिया।

नगर-सेठ की चिन्ता दूर हो गई। वह विवाह की तैयारी करके, निश्चित समय पर बारात लेकर, दूसरे सेठ के नगर में जा पहुँचा।

दूसरे सेठ को जब बारात के आने की खबर मिली, तो वह बहुत घबड़ाया। उसने विवाह के लिए कुछ भी प्रबन्ध नहीं किया था, क्योंकि उसे विश्वास नहीं था कि, उज्जैन का सेठ इतने अल्प समय में बारात के साथ यहाँ पहुँच सकेगा।

पर वह भी बहुत बड़ा सेठ तो था ही। जब उसे बारात के आने की खबर मिली, तो धन के जोर से उसने शीघ्र ही सारा प्रबन्ध पूरा कर लिया।

उज्जैन की बारात सेठ के दरवाजे पर लगी। विवाह बड़ी धूम-धाम से हुआ। सेठ ने दहेज में बहुत-सा धन देकर लड़की को विदा किया। नगर-सेठ फिर विमान के द्वारा उज्जैन लौट गया।

नगर-सेठ विक्रमादित्य की सेवा में उपस्थित हुआ। उसने

विक्रमादित्य से निवेदन किया, 'महाराज' आपकी दया से मेरी इज्जत बच गई। मैं बारात-सहित आपके विमान पर सवार होकर लड़की के पिता के नगर में गया, और विवाह करके फिर अपने नगर में आ गया। आप अब अपना विमान मँगवा लें।

" महाराज, मुझे लड़के के विवाह में दहेज के रूप में बहुत-सा धन मिला है। आपकी बड़ी दया होगी, यदि आप उस धन को भेंट-रूप में स्वीकार करें। "

विक्रमादित्य मुस्कुरा उठे। उन्होंने मुस्कुराते हुए कहा, "नगर-सेठ, तुम जो कुछ कह रहे हो, अपने स्वभाव के अनुसार कह रहे हो, पर मैं अपने स्वभाव को कैसे छोड़ सकता हूँ ? मैं जो चीज एक बार दे देता हूँ, उसे फिर वापस नहीं लेता ! तुम तो यह जानते ही हो कि, मैं उसी धन को ग्रहण करता हूँ, जो मेरा होता है। मैं धन तो लूंगा ही नहीं, अब विमान भी तुम्हारा ही है।"

नगर-सेठ का मस्तक विक्रमादित्य के सामने झुक गया—सदा-सदा के लिए झुक गया !!

१०

शेषनाग की मणियाँ

दोपहर के बाद का समय था।

विक्रमादित्य का दरबार लगा था। विक्रमादित्य राज-सिंहासन पर आसीन थे। आमोद-प्रमोद चल रहे थे। नाच-गान हो रहा था। हँसी और कहकहों से रह-रहकर वातावरण गूंज रहा था।

जब नाच-गान खतम हुआ, तो स्वर्ग और पाताल के राजाओं के दरबारों की चर्चा चल पड़ी। कोई स्वर्ग के राजा के दरबार की प्रशंसा करता था, कोई पाताल के राजा के दरबार की और कोई

विक्रमादित्य के दरबार की। विक्रमादित्य चुप थे। वे विचारों मे डूबे हुए थे, दरबारियो की बातें बड़े ध्यान से सुन रहे थे।

कुछ देर के बाद विक्रमादित्य ने सोचते-सोचते कहा, "यह तो बहुत से लोगों को मालूम है कि, स्वर्ग के राजा का नाम इन्द्र है, पर क्या यह भी किसी को मालूम है कि, पाताल के राजा का क्या नाम है ?"

एक विद्वान् ब्राह्मण ने उत्तर दिया, "महाराज, पाताल के राजा का नाम शेषनाग है। बड़ा प्रतापी और तेजस्वी है। उसी के फणो पर यह पृथ्वी ठहरी हुई है।"

विक्रमादित्य ने फिर कोई दूसरा प्रश्न नही किया। उनके मन मे, पाताल के राजा शेषनाग के दर्शन की अभिलाषा पैदा हो उठी।

दूसरे दिन विक्रमादित्य ने ताल और बैताल को स्मरण किया। दोनों उनके सामने उपस्थित हुए।

विक्रमादित्य ने ताल-बैताल से कहा, "हमें पाताल-लोक में ले चलो। हम पाताल-लोक के राजा शेषनाग के दर्शन करना चाहते हैं।"

ताल-बैताल ने विक्रमादित्य की आज्ञा का पालन किया। उन्होंने उन्हे पाताल-लोक मे पहुँचा दिया।

पाताल-लोक में शेषनाग की राजधानी। राजधानी में शेषनाग का सोने का महल। महल में जगह-जगह मणियाँ जड़ी हुई थी। ऐसा लग रहा था, मानो हजारों सूर्य एक साथ चमक रहे हों। महल के दरवाजे पर कमल की बनी हुई वन्दनवारें झूल रही थी। कमलों से निकल-निकलकर, सुगंध उड़ रही थी। चारो ओर से नाच-गान की मधुर-मधुर ध्वनि आ रही थी।

विक्रमादित्य ने महल के द्वार पर पहुँचकर द्वारपाल से कहा, "मैं उज्जैन से आया हूँ। मेरा नाम विक्रमादित्य है। मैं शेषनागजी

के दर्शन करना चाहता हूँ।"

द्वारपाल ने महल के भीतर जाकर शेषनाग को सूचना दी।

शेषनाग विक्रमादित्य का नाम सुनकर स्वयं बाहर निकल आया। वह बड़े सम्मान के साथ उन्हें अपने महल के भीतर ले गया। उनका बड़ा आदर-सत्कार किया, उनके रहने और खाने-पीने की अच्छी व्यवस्था की।

विक्रमादित्य कई दिनों तक शेषनाग के मेहमान रहे।

कई दिनों के बाद विक्रमादित्य ने उज्जैन लौटने का विचार किया। उन्होंने शेषनाग से कहा, "महाराज, मैं आपके दर्शन से धन्य हो गया। आपने मेरा जो आदर-सत्कार किया है, वह आप ही के योग्य है। अब आप मुझे आज्ञा दें। मैं अपने घर जाऊँगा।"

शेषनाग ने विक्रमादित्य से आग्रह किया, वे कुछ दिनों तक और रहें, पर विक्रमादित्य ने विवशता प्रकट की। वे उज्जैन लौटने के लिए तैयार हो गए।

शेषनाग ने विक्रमादित्य को बड़े आदर से विदा किया। उसने उन्हें चार मणियाँ देते हुए कहा, "ये मणियाँ चार गुण वाली, और चार रंगों की हैं—लाल, पीली, नारंगी और काली। लाल मणि, आप जितना भी चाहेंगे, आपको शीघ्र सोने के गहने दे सकती है। पीली मणि आप जितनी भी सवारी चाहेंगे, आपको दे सकती है नारंगी मणि, आप जितना भी धन चाहेंगे, दे सकती है, और चौथी श्याम मणि, आप जितना भी चाहेंगे, आपके मन को भजन-प्रार्थना में लगा सकती है।"

विक्रमादित्य चारों मणियों को लेकर, शेषनाग से विदा होकर चल पड़े।

नगर से बाहर पहुँचने पर, विक्रमादित्य ने ताल-वैताल को स्मरण किया। दोनों शीघ्र ही उपस्थित हुए। विक्रमादित्य की आज्ञा से, दोनों ने उन्हें फिर उज्जैन पहुँचा दिया।

विक्रमादित्य ने नगर से बाहर, ताल-वैताल को छोड़ दिया। वे पैदल ही नगर की ओर बढ़ने लगे।

विक्रमादित्य अभी कुछ ही दूर गए थे कि, रास्ते में उनके सामने एक वृद्ध मनुष्य पड़ा। उस वृद्ध मनुष्य के शरीर की हड्डियाँ दिखाई पड़ रही थी। उसके हाथ-पैर कांप रहे थे, पर फिर भी वह झाड़ू से रास्ता साफ कर रहा था।

विक्रमादित्य खड़े हो गए। उन्होंने बड़े प्रेम से उसे अपने पास बुलाकर कहा, "भाई, तू कौन है ? तेरा शरीर बहुत ही दुर्बल है। फिर तू झाड़ू देने का काम क्यों कर रहा है ?"

वृद्ध ने विक्रमादित्य की ओर देखा। वह उन्हें पहचान गया। वह बड़ी श्रद्धा से उनके सामने झुककर बोला, 'धर्मावतार, मैं भंगी हूँ। झाड़ू देने की मेरी नौकरी है। यदि मैं झाड़ू न दूँगा, तो मुझे तनख्वाह न मिलेगी। यदि तनख्वाह न मिलेगी, तो फिर मेरा जीवन-निर्वाह किस तरह होगा ?"

विक्रमादित्य के हृदय में दया उमड़ उठी। उनकी आँखें स्नेह और करुणा के जल से भर गईं। उन्होंने भंगी से कहा, 'हमारे पास चार मणियां है। चारों मणियों मे अलग-अलग गुण हैं। एक मणि तुम्हें मन चाहे गहने दे सकती है, दूसरी मणि तुम्हें मन चाहे हाथी-घोड़े दे सकती है। तीसरी मणि मन चाहा धन दे सकती है, और चौथी मणि तुम्हें भगवान की भक्ति दे सकती है। इन चारो मणियों में से तुम जो मणि चाहो, मैं तुम्हें दे सकता हूँ।"

भंगी मन ही मन सोचने लगा, वह कौनसी मणि ले ? वह कुछ देर तक सोच-विचार करता रहा, पर किसी निर्णय पर नही पहुँच सका।

आखिर भंगी ने विक्रमादित्य से कहा "महाराज, आप थोड़ी देर रुकें। मैं घर जा रहा हूँ। अपनी स्त्री, अपनी पुत्र-वधू और अपने लड़के से पूछ आऊँ, मुझे कौनसी मणि लेनी चाहिए ?"

विक्रमादित्य ने भंगी की बात मान ल। . . . हीं रुककर, भंगी के आने की प्रतीक्षा करने लगे।

भंगी ने अपने घर जाकर, अपने कुटुम्बियों को मणियों के गुण बताये।

भंगी की पत्नी ने कहा, "तुम्हें वह मणि लेनी चाहिए, जो मन चाहे गहने दे सकती है।" लड़के ने कहा, "नहीं तुम्हें वह मणि लेनी चाहिए जो हाथी-घोड़े दे सकती है।" और लड़के की पत्नी ने कहा, "नही वह मणि लेनी चाहिए, जो धन दे सकती है।"

भंगी सोचने लगा। उसे तीनों में से किसी की सलाह ठीक नहीं जँची।

भंगी ने कहा, "मुझे तुम तीनों में से किसी की बात ठीक नही लग रही है। मैं तो वह मणि लूंगा, जो भगवान् की भक्ति देती है। भक्ति से बढ़कर कीमती चीज कोई दूसरी नही है। जहां भगवान् की भक्ति रहती है, वहां भगवान् रहते हैं, और जहां भगवान् रहते हैं, वहां सब कुछ रहता है।"

भंगी लौटकर उस जगह गया जहां विक्रमादित्य उसक प्रतीक्षा कर रहे थे।

भंगी ने विक्रमादित्य से कहा, "महाराज, यदि आप दे चाहते हैं, तो मुझे वह मणि दीजिए, जो भगवान् की भक्ति है।"

विक्रमादित्य आश्चर्य-चकित हो उठे। वे सोचने लगे, भंगी कितना अद्भुत है। इसे जरूरत तो धन की है, पर यह रहा है वह मणि, जो भगवान् की भक्ति देती है!

विक्रमादित्य ने भंगी से कहा, "भाई तुम्हें तो धन वा तुम धन देने वाली मणि न माँग कर, भक्ति देने वाली म माँग रहे हो?"

भंगी ने उत्तर दिया, "महाराज, धन नाशवान् है। न

वाली चीज को लेकर हम क्या करेंगे ? भक्ति में प्रेम होता है, श्रद्धा होती है, विश्वास होता है। उससे आत्मा उज्ज्वल होती है। उज्ज्वल आत्मा में परमात्मा रहते हैं।

विक्रमादित्य प्रसन्न हो उठे। उन्होंने चारों मणियाँ भंगी को दे दीं। उन्होंने कहा, "तुम्हारे विचार इतने ऊँचे हैं कि सैकड़ों मणियाँ भी उसके सामने तुच्छ हैं।"

११

ज्योतिषी ब्राह्मण

एक ब्राह्मण था।

ब्राह्मण बहुत बड़ा ज्योतिषी था। वह सामुद्रिक शास्त्र का पंडित था। वह किसी भी मनुष्य के हाथों और पैरों की रेखाओं को देखकर, उसके जीवन का पूरा हाल बता देता था।

सवेरे के बाद का समय था। ब्राह्मण पैदल ही वन के रास्ते से कहीं जा रहा था। हठात्, पगडंडी पर पड़े हुए किसी आदमी के पैरों की छाप पर उसकी दृष्टि पड़ी।

पैरों की छाप में लंबी ऊर्ध्व रेखा थी। उसमें कमल के फूल भी बने हुए थे।

ज्योतिषी ऊर्ध्व रेखा और कमल के फूलों को देखकर सोचने लगा, अवश्य इस रास्ते से कोई बहुत बड़ा राजा नंगे पैर गया है, क्योंकि ऊर्ध्व रेखा और कमल के फूल किसी राजा को छोड़कर अन्य किसी के पैर में नहीं होते। चल के देखना चाहिए, वह राजा कौन है ? वह नंगे पैर कहाँ गया है ?'

ज्योतिषी आगे बढ़कर इधर-उधर राजा का पता लगाने लगा।

ज्योतिषी को राजा तो नहीं मिला, पर एक दूसरा आदमी

मिला, जो एक पेड़ पर चढ़कर लकड़ियाँ काट रहा था। ज्योतिषी ने उस आदमी से पूछा, "क्यों भाई, तू इस पेड़ पर कब से काट रहा है? क्या तुमने इधर से किसी राजा को जाते हुए देखा?"

लकड़ी काटने वाले ने उत्तर दिया, 'मैं सूर्य निकलने के समय से, इस पेड़ पर लकड़ी काट रहा हूँ। इधर से कोई राजा तो क्या, कोई घास काटने वाला भी नहीं गया। फिर राजा वन में पैदल क्यों चलने लगा?"

ज्योतिषी सोचने लगा, इधर से जब कोई राजा नहीं गया, तो फिर वह किसके पैरों की छाप थी? साधारण आदमियों के पाँवों में तो ऊर्ध्व रेखा और कमल के फूल होते नहीं।

ज्योतिषी मन ही मन सोच-विचार करने लगा।

ज्योतिषी ने सोचते-सोचते उस आदमी से कहा, "भाई, क्या तुम अपने दाहिने पैर का तलवा मुझे दिखा सकते हो?"

उस आदमी ने उत्तर दिया, "तुम ब्राह्मण होकर, मुझ लकड़ी काटने वाले के पैर का तलवा देखोगे! नहीं भाई, नहीं, मैं तुम्हें अपने पैर का तलवा न दिखाऊँगा। मुझे पाप लगेगा।"

पर ज्योतिषी हठ करने लगा, प्रार्थना करने लगा। आखिर उस आदमी ने ज्योतिषी को अपने दाहिने पैर का तलवा दिखा दिया।

ज्योतिषी उस आदमी के पैर के तलवे को देखकर आश्चर्य-चकित हो उठा, क्योंकि उसके तलवे में ऊर्ध्व रेखा थी, कमल के फूल थे। ऊर्ध्व रेखा और कमल के फूल राजा के पैर के तलवे में होते हैं, पर वह आदमी तो लकड़ी काट रहा था।

ज्योतिषी ने बड़े ही आश्चर्य से उस आदमी की ओर देखते हुए कहा, "क्यों भाई, तुम कौन हो? क्या तुम सचमुच लकड़ी काटने का ही काम करते हो?"

उस आदमी ने उत्तर दिया, "मैं कौन हूँ—यह तो तुम देख ही रहे हो ! मैं लकड़ी काटने का ही काम करता हूँ।"

ज्योतिषी के मन का आश्चर्य और भी अधिक बढ़ गया। उसने आश्चर्य-भरे स्वर में कहा, "तुम लकड़ी काटने का काम करते हो ? तुम यह काम कब से कर रहे हो ?"

उस आदमी ने उत्तर दिया, "जब से मैंने होश संभाला है तब से यही काम कर रहा हूँ।"

ज्योतिषी चुप हो गया। उसके हृदय को बड़ा आघात लगा। वह सोचने लगा, उसने इतनी मेहनत से सामुद्रिक शास्त्र को पढ़ा, क्या उसकी मेहनत व्यर्थ गई ! सामुद्रिक शास्त्र के अनुसार ऊर्ध्व रेखा और कमल के फूल से युक्त तलवे वाले मनुष्य को राजा होना चाहिए, पर यह आदमी तो लकड़ी काट रहा है। तो क्या सामुद्रिक शास्त्र झूठा है ?

ज्योतिषी का हृदय दुख से मथ उठा। उसे अपनी विद्या पर बड़ा गर्व था पर उसकी विद्या का गर्व चूर-चूर हो रहा था। उसे अपना जीवन व्यर्थ मालूम हो रहा था।

ज्योतिषी ने सोचा, विक्रमादित्य के दरबार में चलकर, उनके पैर के तलवे को देखना चाहिए। यदि उनके पैर के तलवे में ऊर्ध्व रेखा और कमल के फूल न हुए, तो मैं सामुद्रिक शास्त्र को जला दूँगा, जलाकर संन्यासी हो जाऊँगा।

ज्योतिषी विक्रमादित्य के दरबार में गया।

ज्योतिषी ने विक्रमादित्य के पास पहुँचकर उनसे निवेदन किया, "महाराज, मैं सामुद्रिक शास्त्र का पंडित हूँ। मैं आपके पैरों के तलवों की रेखाएँ देखना चाहता हूँ।"

विक्रमादित्य ने ज्योतिषी का बड़ा आदर-सत्कार किया। उसे बैठने के लिए आसन प्रदान किया।

विक्रमादित्य ने ज्योतिषी को बारी-बारी से अपने दोनों पैरों

तलवे दिखाए।

पर यह क्या ? विक्रमादित्य के पैरों के तलवों में न तो ऊर्ध्व रेखा थी और न कमल के फूल ! ज्योतिषी की आँखों के सामने अँधेरा छा गया। वह दुखी मन से उठ पड़ा, और बिना कुछ कहे हुए ही जाने लगा।

विक्रमादित्य ने प्रश्न किया, "क्यों ज्योतिषीजी, क्या बात है ? मेरे पैरों की रेखाओं को देखकर आप दुखी क्यों हो गए ? कुशल तो है। आप बिना कुछ बताए हुए क्यों जा रहे हैं ?"

ज्योतिषी ने उत्तर दिया, "महाराज, आपके पैरों की रेखाओं को देखने के बाद मैं इस नतीजे पर पहुँचा हूँ कि, सामुद्रिक शास्त्र झूठा है। मैं सामुद्रिक शास्त्र को जलाकर साधु बन जाऊँगा।"

विक्रमादित्य ने पुनः प्रश्न किया, "आखिर बात क्या है ? मैं भी तो सुनूँ, आप सामुद्रिक शास्त्र को क्यों झूठ बता रहे हैं ?"

ज्योतिषी ने उत्तर दिया, "महाराज, सामुद्रिक शास्त्र में लिखा है, जिस मनुष्य के पैरों के तलवों में ऊर्ध्व रेखा और कमल के फूल होते हैं, वह बहुत बड़ा राजा होता है।"

"मैंने जंगल में एक ऐसे आदमी को देखा, जिसके पैरों के तलवों में ऊर्ध्व रेखा और कमल के फूल थे, पर वह आ... लकड़ी काट रहा था। इधर आपके पैरों में ऊर्ध्व रेखा... कमल के फूल नहीं है, पर आप राज्य कर रहे हैं !"

"महाराज, सामुद्रिक शास्त्र के असत्य होने का इससे ... प्रमाण और क्या हो सकता है ?"

विक्रमादित्य ने ज्योतिषी को ढाढ़स प्रदान किया, ... के लिए कहा।

विक्रमादित्य ने ज्योतिषी से कहा, "ज्योतिषीजी... सामुद्रिक शास्त्र तो पढ़ा है, पर अधूरा पढ़ा है।"

ज्योतिषी को बड़ा आश्चर्य हुआ । उसने बड़े ही आश्चर्य के साथ कहा, "अधूरा पढ़ा है !"

विक्रमादित्य ने कहा, "हाँ, अधूरा पढ़ा है । हाथों और पैरों की रेखाओं से ही कोई आदमी बड़ा-छोटा नहीं होता । मनुष्य को बड़ा-छोटा उसके कर्म बनाते हैं । सामुद्रिक शास्त्र में जो कुछ लिखा है, वह झूठ नहीं है । किसी मनुष्य के हाथों-पैरों की रेखाओं को देखते हुए उसके भले-बुरे कर्म पर भी विचार करना चाहिए । आपने जिस लकड़ी काटने वाले आदमी के पैरों में राज-चिह्न देखे हैं, हो सकता है, उसने कोई बहुत बड़ा पाप किया हो । मेरे पैरों में राज-चिह्न है, पर ऊपर नहीं, चमड़े के नीचे ।"

विक्रमादित्य ने ज्योतिषी को अपने पैरों के तलवे की ऊपरी परत छीलकर दिखाई । आश्चर्य, उसमें ऊर्ध्व रेखा और कमल के फूल—दोनों थे ।

ज्योतिषी विक्रमादित्य के चरणों पर गिर पड़ा । उसने कहा, "मैं धन्य हूँ महाराज, जो आप ऐसे ज्ञानी और विवेकवान राजा के राज्य में रहता हूँ ।"

१२.
चोरों को दण्ड

रात का समय था ।

विक्रमादित्य अपने महल में सो रहे थे । सहसा उनकी नींद टूटी । उन्हें न जाने क्या सूझा ? वे वेश बदलकर, तलवार लेकर बाहर निकल पड़े ।

विक्रमादित्य गली-कूचे में इधर से उधर घूमने लगे ।

अचानक उनकी ऐसे चार आदमियों पर दृष्टि पड़ी, जो एक स्थान में बैठकर, आपस में राय-सलाह कर रहे थे ।

वे चारों आदमी चोर थे। किसी के घर में चोरी करने की
न तैयार कर रहे थे।

विक्रमादित्य समझ गए, वे चारों आदमी कौन है? यहाँ
कान्त में बैठकर क्या कर रहे हैं?

विक्रमादित्य धीरे-धीरे चलकर उनके पास जा पहुँचे।

चोरों के सरदार ने विक्रमादित्य से पूछा, "तुम कौन हो?
रात में अकेले क्यों घूम रहे हो?"

विक्रमादित्य ने उत्तर दिया, "जो तुम लोग हो, मैं भी वही
हूँ। जो तुम सब करना चाहते हो, वही मैं भी करना चाहता
हूँ।"

सरदार ने विक्रमादित्य की बात का मतलब अपने पक्ष में ही
लगाया। उसने समझा, "यह भी कोई चोर है, जो चोरी करने के
उद्देश्य से घूम रहा है।"

चोरों के सरदार ने कहा, "मैं तुम्हें अपने दल में शामिल कर
सकता हूँ, पर पहले तुम यह बताओ कि, तुममें कौनसा गुण है!"

विक्रमादित्य ने कहा, "पहले तुम चारों बताओ, तुममें
कौन से गुण हैं? फिर मैं भी तुम्हें बताऊँगा, मुझमें कौनसा
गुण है।"

चोरों के सरदार ने कहा, "अच्छी बात है। पहले मैं ही
अपना गुण बता रहा हूँ—"मैं सगुन निकालने में बड़ा चतुर हूँ।
मेरे द्वारा निकाले गए सगुन के अनुसार कार्य करने से अवश्य
कार्य पूरा होता है।"

दूसरे चोर ने कहा, "मैं जानवरों और चिड़ियों की बोलियों
का मतलब अच्छी तरह समझ लेता हूँ।"

तीसरे चोर ने कहा, "मैं किसी भी जगह घुस सकता हूँ।
तो मुझे कोई देख सकता है, न पकड़ सकता है।"

चौथे चोर ने कहा, "मुझे चाहे कितनी ही कड़ी से कड़ी स

दी जाय, पर उस सजा का मुझ पर कुछ भी प्रभाव नही पड सकता ।

सबसे अन्त मे विक्रमादित्य ने कहा, "अच्छा अब मेरा भी गुण सुनो । मैं ऐसे स्थानों को जान लेता हूँ, जहाँ धन गडा रहता है ।"

चोरों का सरदार बडा प्रसन्न हुआ । उसने कहा, "तब तो तुम बडे काम के आदमी हो ! चलो, हमारे साथ ।"

विक्रमादित्य चोरो के दल मे मिल गए ।

चोरो ने विक्रमादित्य से कहा, "पहले तुम अपना गुण प्रकट करो । बताओ, कहाँ धन गडा है ?"

विक्रमादित्य ने उत्तर दिया, "अवश्य, चलो मेरे साथ ।"

चोर विक्रमादित्य को आगे करके चल पडे । अभी कुछ ही दूर गए थे कि, एक चिडिया बोल उठी, "चाकू-चूँ, चाकू-चूँ ।"

दूसरे चोर ने, जो चिड़ियो की बोलियो का मतलब समझता था, कहा, "भाई, आगे जाना ठीक नही । चिड़िया सावधान कर रही है ।"

पर सरदार ने उसकी बात नही मानी । उसने कहा, "तुम व्यर्थ ही शक कर रहे हो । हो सकता है, तुमने चिडिया की बात सुनने में भूल की हो ।"

दूसरा चोर चुप हो गया ।

विक्रमादित्य चोरो को राजकीय बगीचे मे ले गए । उन्होंने एक जगह को दिखाकर कहा, "इसके नीचे बहुत बड़ा खजाना है । खोदो, अवश्य मिलेगा ।"

चोरो ने जब मिट्टी को हटाकर देखा, तो सचमुच वहाँ अशर्फियों से भरे हुए हडे गड़े थे ।

चोर प्रसन्न हो उठे । वे हडो मे से अशर्फियाँ निकाल-निकाल-कर अपने-अपने थैले में भरने लगे ।

जब चोरों के पास भरने के लिए कोई थैला बाकी न रहा, तो वे उन हंडों को खुला छोड़कर चल पड़े।

कुछ दूर जाकर चोरों के सरदार ने कहा, "भाई, अब हम सुरक्षित स्थान पर पहुंच गए हैं। आओ, सब अशर्फियां एक में मिलाकर बराबर-बराबर बंटवारा कर लें।"

पर चोरों के सरदार को यह जानकर बड़ा आश्चर्य हुआ कि पांचवां चोर वहां नहीं है। उसने बड़े आश्चर्य से अपने साथियों से कहा, "वह पांचवां आदमी कहां गया? वह सबके पीछे-पीछे तो आ रहा था।"

सरदार के साथियों को भी बड़ा आश्चर्य हुआ। उन्होंने भी बड़े आश्चर्य के साथ कहा, "हां, पीछे ही पीछे तो आ रहा था। न जाने कहां गायब हो गया?"

इसी समय दूर पर बड़े जोरों से गधा चीत्कार कर उठा, "ढीचो, ढीचो।"

दूसरे चोर ने गधे की आवाज को सुनकर कहा, "भाई, गधा साफ-साफ कह रहा है खतरा है, बहुत बड़ा खतरा है।"

चोर फिर रुके नहीं। जल्दी-जल्दी अपने घर चले गए।

उधर सवेरा हुआ। चारों ओर यह खबर गूंज गई कि राजा के बगीचे में चोरी हुई है। बगीचे के भीतर जो धन गड़ा था, चोर उसे खोदकर निकाल ले गए। शहर कोतवाल सिपाहियों को लेकर घटनास्थल पर पहुंचा। उसने देखा, तो गड्ढे खुले हुए थे। हंडों के भीतर से बहुत-सी अशर्फियां निकाल ली गई थीं। कुछ अशर्फियां इधर-उधर बिखरी पड़ी थीं।

कोतवाल ने सिपाहियों को आदेश दिया, "चाहे जिस प्रकार हो, चोरों को पकड़ा जाए। उन्हें पकड़कर हाजिर किया जाए।"

सिपाही इधर-उधर बिखर पड़े, गुप्त रूप से चोरों का पता लगाने लगे।

बड़ी दौड़-धूप के बाद चारों चोर पकडे गए।

कोतवाल ने चारों चोरो को विक्रमादित्य के सामने उपस्थित किया। वे अपने दरबार में राजसिंहासन पर बैठे हुए थे।

चोरो ने जब विक्रमादित्य को देखा, तो उनके आश्चर्य की सीमा नही रही। वे आपस में एक-दूसरे का मुंह देखने लगे, क्योंकि जिस आदमी ने उन्हें बगीचे के धन का पता बताया था, उसकी सूरत विक्रमादित्य से बिलकुल मिलती थी।

विक्रमादित्य ने चोरो को डांटते हुए कहा, "तुम सबने बगीचे में चोरी क्यो की ? कुशल इसी बात में है कि चोरी का सारा माल लौटा दो।"

चोरो के सरदार ने उत्तर दिया, "महाराज, हम चोरी का सारा माल लौटा देंगे, परं यदि आप आज्ञा दें तो एक बात पूछूं।"

विक्रमादित्य ने सरदार को बात पूछने की आज्ञा दे दी।

चोरो के सरदार ने हाथ जोड़कर कहा, "महाराज, जब हम चोरी करने के लिए निकले, तो रास्ते में एक और आदमी मिला। उसने कहा, वह छिपे हुए धन का स्थान बताने में चतुर है। वही आदमी हमें राजा के बगीचे में ले गया। उसी आदमी ने हमें वह जगह बताई थी, जहां अशर्फियां गड़ी हुई थीं।

"जब हम लोग अशर्फियों को लेकर चले और बंटवारे का समय आया, तो वह आदमी न जाने कहां गायब हो गया। आज तक मैंने ऐसा चोर कहीं नही देखा, जो चोरी करने में मदद तो करे, पर जब माल में हिस्सा बंटाने का समय आए, तो गायब हो जाय। महाराज, उस आदमी की सूरत शक्ल बिलकुल आप ही की तरह थी।"

विक्रमादित्य मुस्कुरा उठे। उन्होंने चोरों के सरदार से कहा, "तुम सच कह रहे हो! वह आदमी मैं ही था। मैंने ही तुम लोगों के

गुण सुनकर, अपना यह गुण बताया था कि मैं ज़मीन के भीतर गड़े हुए धन का पता बता सकता हूँ।"

विक्रमादित्य अपनी बात खतम करके मन ही मन सोचने लगे।

कुछ क्षणों के बाद विक्रमादित्य ने पुनः कहा, "तुम सब चोरी क्यों करते हो? क्या तुम्हें यह मालूम नहीं है कि चोरी करना बहुत बड़ा पाप है।"

चोरों के सरदार ने हाथ जोड़कर निवेदन किया, "जानता हूँ महाराज, पर फिर भी चोरी करनी पड़ती है। यदि चोरी न करूँ, तो फिर भरण-पोषण किस तरह हो, बाल-बच्चों का जीवन किस प्रकार चले?"

विक्रमादित्य ने कहा, "तुम सबने चोरी की है। मैं तुम्हें दण्ड दे रहा हूँ—चोरी करना छोड़ दो। जितनी अशर्फियाँ ले गये हो, अपने पास रखो। मैं तुम्हें एक-एक लाख अशर्फियाँ और दे रहा हूँ।"

विक्रमादित्य ने चोरों को छोड़ दिया। उन्हें चार लाख अशर्फियाँ देने की आज्ञा प्रदान की।

चोर विक्रमादित्य के चरणों पर गिर पड़े। उन्होंने प्रतिज्ञा की, "अब हम चोरी कभी नहीं करेंगे।"

दया और सहानुभूति से लोगों से बुरे कर्मों को छुड़ाने वाले विक्रमादित्य की प्रशंसा कौन नहीं करेगा?

१३

बलि का कवच

राजा विक्रमादित्य राजसिंहासन पर थे।

मंत्री, सेनापति, सभासद—सभी अपने-अपने स्थान पर बैठे

हुए थे। ससार के बड़े-बड़े पुरुषों के संबंध मे चर्चाएँ चल रही थी। कोई किसी के साहस की प्रशंसा कर रहा था, कोई किसी के ऊँचे विचारो के लिए प्रशसा के पुल बना रहा था।

एक सभासद ने उठकर निवेदन किया, "महाराज, पातालपुरी का राजा बलि बहुत बड़ा दानी है। तीनो लोको मे उसके समान दानी कोई नही है।"

विक्रमादित्य ने मन ही मन बलि के दर्शन का निश्चय किया।

दूसरे दिन विक्रमादित्य ने ताल और वैताल को स्मरण किया। दोनो शीघ्र ही उनके सामने उपस्थित हुए।

विक्रमादित्य ने ताल-वैताल से कहा, "मैं पातालपुरी के राजा बलि के दर्शन करना चाहता हूँ। मुझे पातालपुरी ले चलो।"

ताल-वैताल ने विक्रमादित्य की आज्ञा का पालन किया। उन्होंने उन्हे पातालपुरी मे पहुँचा दिया।

विक्रमादित्य घूम-घूमकर पातालपुरी को देखने लगे। एक से एक सुन्दर भवन बने हुए थे। जिस प्रकार भवन सुन्दर थे, उसी प्रकार उन भवनो मे रहने वाले स्त्री-पुरुष भी सुन्दर थे। सभी लोग अपने-अपने कामों मे लगे हुए थे। कही धर्म-चर्चा हो रही थी, तो कही वेद-पाठ हो रहा था। कही तरह-तरह की चीजें बनाई जा रही थी, तो कही पहलवान कुश्तियाँ लड़ रहे थे। कही संगीत हो रहा था, तो कही विद्यार्थी शास्त्र पढ़ रहे थे; तात्पर्य यह कि, चारो ओर चहल-पहल थी, चारो ओर सक्रियता थी।

विक्रमादित्य पातालपुरी के वैभव और उसकी शोभा को देखकर मोहित हो उठे। वे मन ही मन बलि के भाग्य और उसके सुप्रबंध की प्रशसा करने लगे।

विक्रमादित्य पातालपुरी की शोभा को देखते हुए बलि के

राजभवन के द्वार पर उपस्थित हुए। द्वार पर प्रहरी खड़े थे।

विक्रमादित्य ने प्रहरियों से कहा, "मैं उज्जैन का राजा विक्रमादित्य हूँ, महाराज बलि के दर्शन करने के लिए आया हूँ।"

बलि अपनी राजसभा में राजसिंहासन पर आसीन था। प्रहरी ने उसके पास जाकर विक्रमादित्य के आने सूचना दी।

बलि ने उत्तर दिया, "विक्रमादित्य से कहो, लौट जायँ। मैं पृथ्वी के किसी निवासी को अपने पास नहीं बुला सकता; क्योंकि पृथ्वी का अच्छे से अच्छा आदमी भी अपने भीतर छल छिपाए रहता है।"

प्रहरी ने बलि का सन्देश विक्रमादित्य को सुना दिया।

पर विक्रमादित्य बलि के राजभवन के द्वार पर खड़े रहे। उन्होंने प्रहरी से दूसरी बार कहा, "मैं बड़ी लालसा से बलि के दर्शन करने के लिए आया हूँ। मैं उनके दर्शन किए बिना नहीं जाऊंगा।"

प्रहरी ने बलि के पास जाकर, उसे विक्रमादित्य का सन्देश दिया।

पर बलि ने फिर वही उत्तर दिया। उसने कहा, "विक्रमादित्य से कहो, मैं उनसे नहीं मिलूंगा। वे लौट जायँ।"

बलि का सन्देश सुनकर विक्रमादित्य बड़े दुखी हुए। उन्होंने अपमान से क्षुब्ध होकर, अपनी तलवार से ही अपना सिर काट लिया।

विक्रमादित्य का सिर और धड़ जमीन पर अलग-अलग गिर पड़े। बलि के महल का द्वार उनके रक्त से लाल हो उठा।

प्रहरी दौड़कर बलि के पास गया। उसने बलि से निवेदन किया, "महाराज आपके दर्शन न कर पाने के कारण विक्रमादित्य ने अपने हाथों से ही अपना सिर काट डाला।"

बलि ने प्रहरी को अमृत-कलश देकर कहा, "विक्रमादित्य के शव पर अमृत छिड़ककर उन्हे जीवित कर दो।"

प्रहरी ने बलि की आज्ञा का पालन किया। उसने विक्रमादित्य के सिर को धड़ से जोड़कर अमृत छिड़क दिया। विक्रमादित्य जीवित हो उठे।

विक्रमादित्य ने पुन: प्रहरी से कहा, "जाकर बलि से कहो, मैं उनके दर्शन किए बिना कदापि नही जाऊँगा।"

प्रहरी ने बलि के पास जाकर निवेदन किया, "महाराज, मैंने अमृत छिड़ककर विक्रमादित्य को जिला दिया, पर वे जाने के लिए तैयार नही हैं। वे कहते हैं, जब तक महाराज के दर्शन नही होंगे, वे नही जायेंगे।"

पर बलि ने फिर वही उत्तर दिया। उसने कहा, "उनसे कहो, वे हठ न करें। मैं उनसे नही मिल सकता।"

पर फिर भी विक्रमादित्य विचलित नही हुए। उन्होंने फिर अपना सिर काट दिया।

प्रहरी ने बलि की आज्ञा से फिर अमृत छिड़ककर पहले की भाँति ही उन्हे जीवित कर दिया।

इसी प्रकार विक्रमादित्य ने कई बार अपने सिर को काटकर फेंक दिया, और कई बार बलि ने उन्हे जीवित कर दिया।

विक्रमादित्य के बार-बार सिर काटने से, आखिर बलि के मन में हलचल मच गई। वह अपने आप ही यह कहता हुआ उठ पड़ा, "विक्रमादित्य अद्भुत साहसी है!"

बलि स्वयं द्वार पर विक्रमादित्य के सामने उपस्थित हुआ। उसने विक्रमादित्य से कहा, "नर-श्रेष्ठ, मैं पृथ्वी के बड़े-बड़े दानियों और धर्मात्माओं से भी नही मिला, पर तुमने मुझे अपने त्याग से विवश कर दिया। कहो, तुम क्या चाहते हो?"

विक्रमादित्य ने निवेदन किया, "महाराज, मुझे कुछ नही

चाहिए। मुझे आपके दर्शन हो गये, मानो सब कुछ मिल गया। मैं आपके दर्शन से धन्य हो गया, कृतार्थ हो गया।"

बलि प्रसन्न हो उठा। उसने विक्रमादित्य को एक कवच प्रदान करके कहा, "इस कवच से तुम जो भी चीज मांगोगे, वही मिलेगी।"

विक्रमादित्य कवच लेकर, बलि को प्रणाम करके चल पड़े।

ताल-बैताल ने विक्रमादित्य को, फिर उनके नगर में पहुँचा दिया।

विक्रमादित्य नगर में प्रवेश ही कर रहे थे कि, एक स्त्री के सकरुण विलाप को सुनकर रुक गए। उन्होंने लोगों से पूछा, "यह स्त्री इस प्रकार क्यों रो रही है?"

लोगों ने कहा, "महाराज, इस स्त्री के पति का स्वर्गवास हो गया है। लोग उसे श्मशान ले जा रहे हैं।"

विक्रमादित्य के हृदय में दया उमड़ उठी। उन्होंने स्त्री के पास जाकर, उसे बलि का कवच प्रदान किया, "कहा, "तुम इस कवच को हाथ में लेकर इससे अपने पति का जीवन मांगो। तुम्हारा पति अवश्य जीवित हो जायेगा।"

स्त्री ने विक्रमादित्य की आज्ञा का पालन किया। उसने कवच हाथ में लेकर कहा, "कवच, मैं तुमसे अपने पति का जीवन चाहती हूँ।"

स्त्री का यह कहना था कि, उसका पति जीवित हो उठा।

विक्रमादित्य की जय-जयकार से आस-पास की धरती ही नहीं, स्वर्ग भी गूंज उठा—बड़े जोरों से गूंज उठा।

१४

बुद्धि का चमत्कार

वाराणसी मे एक राजा राज्य करता था।

राजा का नाम प्रतापमुकुट था। प्रतापमुकुट बड़ा प्रतापी था। उसके बेटे का नाम वज्रमुकुट था। वज्रमुकुट बड़ा हठी था। वह जिस बात के लिए हठ करता था, उसे पूरी करके ही दम लेता था।

एक दिन वज्रमुकुट मंत्री के लड़के के साथ, वन मे शिकार खेलने के लिए गया। मन्त्री का लड़का बड़ा बुद्धिमान और बड़ा अनुभवी था।

वन में एक तालाब था। तालाब के किनारे एक मन्दिर था। तालाब में कमल खिले थे। कमलों पर भौंरे गुंजार कर रहे थे। पानी में चकवा और चकवी पक्षी किलोलें कर रहे थे।

वज्रमुकुट शिकार करते-करते थक गया, तो तालाब पर जा पहुँचा। मन्त्री का लड़का तो मन्दिर मे लेटकर आराम करने लगा, पर राजकुमार सीढ़ियो से नीचे उतरकर, तालाब मे पानी पीने के लिए गया।

राजकुमार जब पानी पी रहा था, तो सहसा उसकी दृष्टि तालाब के उस पार चली गई। उस पार एक राजकुमारी अपनी सखियों के साथ नहा रही थी।

राजकुमार और राजकुमारी दोनों ने एक-दूसरे को देखा। दोनों एक-दूसरे पर मोहित हो गए।

राजकुमार टकटकी लगाकर राजकुमारी की ओर देखने लगा।

राजकुमारी नहाकर बाहर निकली। उसके हाथ में कमल का एक फूल था। उसने उस पुष्प को कान से लगाकर, फिर

दाँतों से कुतरकर, पैरों के नीचे दबाया, फिर उठाकर हृदय से लगा लिया।

राजकुमारी अपनी सखियों के साथ चली गई।

पर राजकुमार का तो बुरा हाल हो गया। उसे तो अपनी सुध-बुध तक न रही।

राजकुमार जब मन्दिर में गया, तो उसके बुरे हाल को देखकर मंत्री के लड़के ने पूछा, "क्या बात है, तुम्हारी सूरत क्यों बदली हुई है ?"

पर राजकुमार टाल गया। उसने कहा, "कुछ नहीं, यों ही, न जाने क्यों जी घबरा रहा है ?"

राजकुमार राजमहल में लौट गया।

राजमहल में राजकुमार का और भी बुरा हाल हो गया। उसे हर क्षण राजकुमारी की याद दुख दिया करती थी। उसका खाना-पीना सब कुछ छूट गया।

मंत्री का लड़का बड़ा चिन्तित हुआ। उसने राजकुमार से बार-बार पूछा, "आखिर, उसे क्या हुआ है ? उसे खाना-पीना क्यों नहीं अच्छा लगता ?"

पहले तो राजकुमार ने नहीं बताया, पर जब मंत्री का लड़का पीछे पड़ गया, तो बताना ही पड़ा कि उसे खाना-पीना क्यों नहीं अच्छा लगता ?"

मंत्री के लडके ने पूछा, "क्या तुम राजकुमारी का पता-ठिकाना जानते हो ?"

राजकुमार ने जवाब दिया, "मैं राजकुमारी का पता-ठिकाना कुछ नहीं जानता। वह जब तालाब पर से जाने लगी थी, तो उसने कमल का फूल कान से लगाकर, दाँतों से कुतरकर पैरों के नीचे दबा दिया था, फिर उसे उठाकर अपने हृदय से लगा लिया था।"

मंत्री के लड़के ने कहा, "मैं समझ गया, वह कौन है ? कहाँ रहती है, और किसकी लड़की है ?"

राजकुमार ने बड़े आश्चर्य के साथ कहा, "क्या तुम समझ गए, वह कौन है ? किस तरह समझ गए ?"

मंत्री के लड़के ने जवाब दिया, "उसने कमल का फूल अपने कानों से लगाया। इसका मतलब यह है कि, वह कर्नाटक की रहनेवाली है। उसने कमल के फूल को दाँतों से कुतरा। इसका मतलब यह है कि, वह दन्तवाट राजा की पुत्री है। उसने कमल के फूल को पैरों के नीचे दबाया। इसका मतलब यह है कि, उसका नाम पद्मावती है। उसने कमल के फूल को अपने हृदय से लगाया। इसका मतलब यह है कि, वह मुझसे प्रेम करती है।"

राजकुमार मंत्री के लड़के के पैरों पर गिर पड़ा, बोला, "तुम तो बड़े बुद्धिमान हो ! मुझे राजकुमारी से मिलाने की कृपा करो।"

राजकुमार और मंत्री का लड़का दोनों हर एक प्रकार से तैयार होकर कर्नाटक की ओर चल पड़े।

कर्नाटक में, राजा के महल के पीछे एक बुढ़िया रहती थी, दिन-भर चर्खा चलाया करती थी।

राजकुमार और मंत्री का लड़का दोनों बुढ़िया के घर जा पहुँचे, बोले, "हम दोनों व्यापारी हैं, माल खरीदने आये हैं। अगर अपने घर में रहने के लिए जगह दे दो, तो बड़ी दया हो।"

बुढ़िया के घर में, उसे छोड़कर और कोई नहीं था। उसने उन दोनों को अपने घर में टिका लिया।

एक दिन राजकुमार ने बुढ़िया से पूछा, "माई ! क्या तुम्हारा और कोई नहीं है ? आखिर तुम्हारी गुजर-बसर किस तरह होती है ?"

बुढ़िया ने जवाब दिया, "मैं राजकुमारी पद्मावती की धाय

हूँ। मैंने ही उसका पालन-पोषण किया है। गुजर-बसर के लिए मुझे राजमहल में खर्च मिलता है। मैं हर पांचवें-छठे दिन राजकुमारी के पास जाया करती हूँ।"

राजकुमार और मंत्री का लड़का दोनों बड़े प्रसन्न हुए।

एक दिन जब बुढ़िया राजकुमारी के पास जाने लगी, तो राजकुमार ने उससे कहा, "माई, दया करके राजकुमारी से कहना—वन में तालाब पर जिस युवक से तुम्हारी भेंट हुई थी, वह आया है, तुमसे मिलना चाहता है।"

बुढ़िया ने राजकुमारी के पास जाकर, राजकुमार को सन्देश दिया।

राजकुमारी ने जवाब में, हाथ में चन्दन लगाकर, बुढ़िया के गाल पर कसकर तमाचा जड़ा, कहा, "जा चली जा मेरे पास से!"

बुढ़िया गाल सहलाते हुए लौट गई। उसने राजकुमार से कहा, "मैंने राजकुमारी को तुम्हारा सन्देश दिया, पर उसने तो हाथ में चंदन लगाकर, मेरे गाल पर तमाचा जड़ दिया।"

पर मंत्री के लड़के ने इसका दूसरा ही मतलब निकाला। उसने राजकुमार से कहा "तुम घबराओ नहीं। राजकुमारी ने हाथ में चंदन लगाकर, बुढ़िया के मुँह पर जो तमाचा मारा है, उसका मतलब यह है कि, इस समय उजाला पाख है। अंधेरा पाख आने दो, तब मिलना।"

अँधेरा पाख आने पर राजकुमार ने बुढ़िया के द्वारा फिर अपना सन्देश भेजा।

पर इस बार राजकुमारी ने अपनी तीन उँगलियाँ केसर में डुबोकर, बुढ़िया के गाल पर तमाचा मारा।

राजकुमार बड़ा दुखी हुआ, पर मंत्री के लड़के ने उसे ढाढ़स बंधाया, "तुम चिन्ता न करो। राजकुमारी ने तुम्हें तीन दिन बाद

बुलाया है।"

तीन दिन बाद राजकुमार राजकुमारी से मिला। वह उसे अपने महल के भीतर ले गई।

राजकुमार महल के भीतर, राजकुमारी के कमरे में रहने लगा। राजकुमारी उसका बडा आदर-सत्कार करती थी, उसे हर एक प्रकार से सुख और आराम पहुंचाया करती थी।

लगभग एक महीना बीत गया।

राजकुमार को मंत्री के लड़के की याद आई, मां-बाप की याद आई, घर-द्वार की याद आई।

राजकुमार उदास हो उठा। राजकुमारी ने पूछा, "क्या बात है? तुम उदास क्यों हो?"

राजकुमार ने सब कुछ सच-सच बता दिया। उसने कहा, "इसी नगर में उसका मित्र उसकी राह देख रहा होगा। वह अपने मन में क्या सोच रहा होगा? मुझे अब उसके पास जाना चाहिए।"

राजकुमारी ने उत्तर दिया, "अवश्य जाओ! मेरी ओर से अपने मित्र को भेंट भी देना।"

राजकुमारी ने राजकुमार को कुछ लड्डू दिए और कहा, "ये अपने मित्र को दे देना।"

राजकुमार मंत्री के लड़के के पास लौट गया। दोनों एक-दूसरे से मिलकर बड़े प्रसन्न हुए।

राजकुमार ने मंत्री के लडके को राजकुमारी की भेंट दी।

पर मंत्री के लडके ने उन लड्डुओं को नहीं खाया, कहा, इनमें जहर मिला है।"

मंत्री के लड़के ने लड्डू एक कुत्ते को खिलाकर सिद्ध कर दिया, उनमें जहर मिला हुआ है, क्योंकि लड्डुओं को खाते ही कुत्ते ने प्राण त्याग दिये।

योगी ने जवाब दिया, "महाराज मैं चोर नहीं हूँ, मैं तो योगी हूँ। मैं रात मे डाकिनी सिद्ध कर रहा था। अचानक वह पहुँची, मुझे अपने सारे गहने दे गई।"

राजा ने बड़े ही आश्चर्य के साथ कहा, "पर ये गहने तो राजकुमारी के है। क्या राजकुमारी डाकिनी है ?"

योगी ने जवाब दिया, "मैं यह नहीं कहता महाराज, राजकुमारी डाकिनी है, पर ये गहने मुझे डाकिनी ने ही दिए है। मैंने उसकी गर्दन पर काली स्याही से 'तिल' का निशान भी बना दिया था।"

राजा के मन मे सन्देह पैदा हो उठा। उसने जब राजकुमारी की गर्दन दिखवाई तो सचमुच गर्दन पर तिल के निशान बने थे।

राजा ने राजकुमारी को डाकिनी समझकर, वन में छुड़वा दिया।

मंत्री का लड़का पहले से ही राजकुमार के साथ वन में मौजूद था।

दोनो राजकुमारी को पकड़कर अपने देश लौट गए।

राजकुमार राजकुमारी के साथ विवाह करके सुख से जीवन बिताने लगा। वह जब तक जीवित रहा, अपने मित्र, मंत्री के लड़के की बुद्धि का लोहा मानता रहा।

बैताल ने विक्रमादित्य से कहा, "महाराज! बताइए तो, राजकुमार, मंत्री का लड़का, राजकुमारी और राजा—इन चारो में कौन दोषी है ?"

विक्रमादित्य ने उत्तर दिया, इन चारो मे राजा दोषी है। राजकुमार ने तो अपना कार्य किया, मंत्री के लड़के ने अपने कर्तव्य का पालन किया, और राजकुमारी ने मोह मे राजकुमार को न जाने देने का यत्न किया, पर राजा ने बिना सोचे-समझे,

राजकुमारी के कपट और ईर्ष्या पर राजकुमार का मन बड़ा दुखी हुआ।

पर मंत्री के लडके ने उसे समझाया, "तुम चिन्ता न करो! मैं राजकुमारी से बदला लूंगा, उसे यहां से ले चलूंगा।"

"तुम फिर राजकुमारी के पास जाओ। रात में जब वह सो जाए, तो उसके सभी आभूषण उतार लो। फिर उसके गर्दन पर काले रंग से तिल का निशान बनाकर चले आओ।"

राजकुमार ने मंत्री के लड़के के कहने के अनुसार ही काम किया। फिर वह राजकुमारी के पास गया। उसके सभी आभूषण लेकर, निशान बनाकर पुन. लौट गया।

मंत्री के लड़के ने राजकुमार से कहा, "तुम इन आभूषणों को राजा के सुनार के पास बेचने जाओ। जब पकड़े जाओ, तो कह देना—'ये आभूषण तुम्हें तुम्हारे गुरु ने दिए हैं।' इसके बाद जो कुछ होगा, मैं देख लूंगा।"

राजकुमार ने मंत्री के लड़के के कहने के अनुसार ही काम किया। वह पकड़ा गया, राजा के सामने उपस्थित किया गया।

राजा ने कहा, "ये गहने तो राजकुमारी के हैं! तुम्हें कैसे मिले? अवश्य तुमने इन गहनों की चोरी की है।"

राजकुमार ने जवाब दिया, "महाराज, मैं कुछ नहीं जानता। ये गहने मुझे मेरे गुरु ने दिए हैं। वे बहुत बड़े योगी हैं।"

राजा ने योगी को पकड़ने की आज्ञा दे दी।

मंत्री का लड़का पहले से ही योगी बना बैठा था।

मंत्री का लड़का योगी के रूप में पकड़ा गया। वह राजा के सामने उपस्थित किया गया।

राजा ने मंत्री के लडके से, जो योगी के वेश में था, "ये गहने राजकुमारी के हैं। तुम्हें कहां मिले? अवश्य तुमने इन गहनों की चोरी की है।"

योगी ने जवाब दिया, "महाराज मैं चोर नहीं हूँ, मैं तो योगी हूँ। मैं रात में डाकिनी सिद्ध कर रहा था। अचानक वह पहुँची, मुझे अपने सारे गहने दे गई।"

राजा ने बड़े ही आश्चर्य के साथ कहा, "पर ये गहने तो राजकुमारी के हैं। क्या राजकुमारी डाकिनी है?"

योगी ने जवाब दिया, "मैं यह नहीं कहता महाराज, राजकुमारी डाकिनी है, पर ये गहने मुझे डाकिनी ने ही दिए हैं। मैंने उसकी गर्दन पर काली स्याही से 'त्रिशूल' का निशान भी बना दिया था।"

राजा के मन में सन्देह पैदा हो उठा। उसने जब राजकुमारी की गर्दन दिखवाई तो सचमुच गर्दन पर त्रिशूल के निशान बने थे।

राजा ने राजकुमारी को डाकिनी समझकर, वन में छुड़वा दिया।

मंत्री का लड़का पहले से ही राजकुमार के साथ वन में मौजूद था।

दोनों राजकुमारी को पकड़कर अपने देश लौट गए।

राजकुमार राजकुमारी के साथ विवाह करके सुख से जीवन बिताने लगा। वह जब तक जीवित रहा अपने मित्र मंत्री के लड़के की बुद्धि का लोहा मानता रहा।

बेताल ने विक्रमादित्य से कहा, "महाराज! बताइए, राजकुमार, मंत्री का लड़का, राजकुमारी और राजा—इन चारों में कौन दोषी है?"

विक्रमादित्य ने उत्तर दिया इन चारों में राजा दोषी है। राजकुमार ने तो अपना कार्य किया मंत्री के लड़के ने अपने कर्तव्य का पालन किया, और राजकुमारी ने प्रेम के राजकुमार को न जाने देने का यत्न किया, पर राजा ने बिना सोचे-समझे,

बिना जाँच-पड़ताल किए हुए ही राजकुमारी को महल से निकाल दिया।

जो बिना सोचे-समझे काम करता है, दोषी वही होता है।

१५

स्त्री किसकी है?

ऐसा ही ब्राह्मण के बेटों ने भी किया। उन्होंने भी मधुमालती का विवाह एक ब्राह्मण के लड़के से पक्का कर दिया।

लड़की एक, वर तीन-तीन! तीनों वरों में एक का नाम वामन, दूसरे का नाम विक्रम और तीसरे का नाम मधुसूदन था। तीनों में कोई किसी से रत्तीभर कम नहीं था।

ब्राह्मण के सामने चिन्ता का पहाड़ खड़ा हो गया। वह सोचने लगा, अब हो तो क्या हो? कन्या एक, और वर तीन! 'किसके साथ कन्या का विवाह हो, किसके साथ न हो?'

पर विधाता ने ब्राह्मण की चिन्ता दूर कर दी।

तीनों वरों की बारातें जब ब्राह्मण के द्वार पर पहुँची, तो साँप के काटने से लड़की की मृत्यु हो गई।

लड़की को बचाने के लिए उसके भाइयों और वरों ने बड़ा यत्न किया, बड़ी दौड़-धूप की, पर लड़की बच नहीं सकी।

ब्राह्मण करता तो क्या करता? उसने श्मशान में लड़की का दाह-संस्कार कर दिया।

ब्राह्मण जब दाह-संस्कार करके चला गया, तो तीनों वर जमा हुए। एक ने तो हड्डियाँ बटोरी, दूसरे ने राख इकट्ठी की, और तीसरा राख शरीर में मलकर योगी हो गया।

तीनों तीन तरफ चल पड़े। एक के कन्धे पर हड्डियों की गठरी थी, दूसरे के कंधे पर राख की झोली थी, और तीसरा पूरा योगी बना हुआ था।

तीनों देश-देश में घूमने लगे।

एक दिन योगी एक ब्राह्मण गृहस्थ के द्वार पर उपस्थित हुआ। भोजन का समय था। ब्राह्मण ने योगी से कहा, "आप इस समय का भोजन मेरे ही घर कीजिए।"

योगी रुक गया।

ब्राह्मण और योगी दोनों एक साथ भोजन करने बैठे, पर

इसी समय एक ऐसी दुर्घटना घटी, जिसके कारण घटना लम्बी बन गई और साथ ही बड़ी रोचक और मनोरंजक भी।

ब्राह्मण की स्त्री जब खाना परोस रही थी, उसका छोटा लड़का आ गया। वह अपनी माँ से बोला, 'पहले मुझे खाना दो, फिर उसके बाद योगी को दो।" माँ ने लड़के को बहुत समझाया, पर बात उसके कंठ के नीचे नहीं उतरी। वह अपनी माँ का आँचल पकड़कर मचल गया, कहने लगा, "मैं तो पहले खाना खाऊँगा। तुम्हें भोजन न परोसने दूँगा।"

माँ खीझ उठी। उसने बड़े जोर से लड़के को झटक दिया। वह दूर, एक पत्थर पर जा गिरा। सिर फट गया, लड़के का दम निकल गया।

योगी का मन दुख और घृणा से भर गया। वह चौके से उठ पड़ा। उसने ब्राह्मण से कहा, "तुम्हारी स्त्री ने बालक की हत्या की है! यह पापिनी है। मैं इसके हाथ का बनाया हुआ भोजन ग्रहण न करूँगा।"

पर ब्राह्मण ने योगी को जाने नहीं दिया। उसने कहा, "आप हमारे अतिथि हैं। बिना भोजन किए हुए आप नहीं जा सकते। मैं अभी अपनी स्त्री को हत्या के पाप से छुड़ाये दे रहा हूँ।"

ब्राह्मण के पास संजीवनी विद्या की पुस्तक थी। वह शीघ्र ही पुस्तक निकाल लाया। उसने पुस्तक में लिखे हुए एक मंत्र को पढकर, मृत बालक के शरीर पर पानी का छींटा दिया। आश्चर्य, बालक जीवित हो उठा।

इस अनोखे चमत्कार को देखकर, योगी खाना-पीना सब भूल गया। वह सोचने लगा, यदि किसी तरह एक पुस्तक उसके हाथ लग जाती, तो वह भी मधुमालती को जिला लेता।

योगी खा-पीकर, उस दिन रात में ब्राह्मण के ही घर रह गया।

रात में जब ब्राह्मण और उसकी स्त्री सो गई, तो योगी चुपचाप उठा, और उसकी सजीवनी विद्या की पुस्तक लेकर चलता बना।

पर योगी के पास मधुमालती की हड्डियां, राख आदि कुछ नहीं था। फिर वह सजीवनी विद्या का प्रयोग करता तो किस प्रकार करता? वह चिन्तित हो उठा।

योगी उन दोनों वरों को ढूंढने लगा, जिनके पास मधुमालती के शरीर की हड्डियां और राख थी।

संयोग की बात, योगी ने उन दोनों को ढूंढ निकाला।

दोनों यह जानकर बड़े प्रसन्न हुए कि, योगी के पास एक ऐसी विद्या है, जिससे वह मधुमालती को जीवित कर सकता है।

तीनों वर श्मशान में उपस्थित हुए। तीनों ने मधुमालती की हड्डियों और राख को एक स्थान में सजाकर रखा। योगी ने मंत्र पढ़कर, उन पर पानी का छींटा दिया। आश्चर्य, मधुमालती जीवित हो उठी।

मधुमालती के जीवित होने पर प्रश्न यह खड़ा हुआ, वह किसकी स्त्री है? तीनों में से हरएक, अपने आपको मधुमालती का पति बता रहा था।

तीनों मधुमालती के लिए तर्क-वितर्क करने लगे।

सहसा वैताल उपस्थित हुआ। उसने सब कुछ सुनकर तीनों से कहा, "चलो विक्रमादित्य के पास चलो। वहीं सब कुछ सुनकर न्याय करेंगे—स्त्री किसकी है?"

वैताल तीनों को लेकर विक्रमादित्य की सेवा में उपस्थित हुआ। उसने विक्रमादित्य को पूरी कहानी सुनाकर कहा, "महाराज, बताइए, स्त्री किसकी है?"

महाराज विक्रमादित्य ने उत्तर दिया, "यह स्त्री उसकी है जिसने मधुमालती की राख इकट्ठी की थी।"

वैताल को बड़ा आश्चर्य हुआ। उसने प्रश्न किया, "ऐसा क्यों महाराज?"

विक्रमादित्य ने उत्तर दिया, "जिस वर ने मधुमालती की हड्डियां इकट्ठी कीं, वह तो उनका लड़का हुआ, क्योंकि लड़का ही हड्डियां इकट्ठी करता है। जिस वर ने उसे जीवन-दान दिया, वह पिता के समान है, क्योंकि पिता ही जीवन-दान देता है। 'राख' बटोरने का काम प्रेमियों के द्वारा होता है। अतः जिसने राख इकट्ठी की है, वही प्रेमी और पति है।"

विक्रमादित्य के न्याय को सुनकर वैताल और तीनों वर बड़े प्रसन्न हुए। वे उनकी बुद्धिमत्ता की प्रशंसा करते हुए उनके दरबार से चले गए।

पर वैताल तो विक्रमादित्य के गुणों और न्याय पर मुग्ध होकर उन्हीं के साथ-साथ रहने लगा।

वैताल ने विक्रमादित्य के साहस, शौर्य और न्याय पर अपने आपको निछावर कर दिया था।

१६
वीरवर की स्वामी-भक्ति

प्राचीन काल की बात है।

वर्धमान नगर में एक राजा राज्य करता था। राजा का नाम रूपसेन था। रूपसेन बड़ा प्रतापी और यशस्वी था। उसके प्रताप और यश पर लक्ष्मी जी भी विमुग्ध रहा करती थीं।

दोपहर का समय था। रूपसेन राजसिंहासन पर विराजमान था, राज-काज में लगा हुआ था।

सहसा राजा के सामने एक आदमी उपस्थित हुआ। वह हथियारों से लैस था, हाथ जोड़कर राजा से बोला, "महाराज,

मैं एक सिपाही हूँ, नौकरी चाहता हूँ।"

राजा ने आदमी की ओर देखा, उसके अंग-अंग से साहस और वीरता टपक रही थी। राजा ने पूछा, "क्या नाम है, कौनसा काम करोगे, क्या वेतन लोगे?"

आदमी ने उत्तर दिया, "महाराज, नाम तो मेरा वीरवर है। आप जो कहेंगे, वही काम करूँगा। वेतन प्रतिदिन एक हजार सोने की अशर्फियाँ लूंगा।"

राजा चमत्कृत हो उठा, 'प्रतिदिन एक हज़ार अशर्फियाँ! यह तो बहुत है। इसके बदले में यह काम कौनसा करेगा?' राजा मन ही मन सोचने लगा।

राजा ने सोचते हुए जवाब दिया, "अच्छी बात है! तुम्हें प्रतिदिन एक हज़ार सोने की अशर्फियाँ मिलेंगी। तुम्हें रात में पहरेदारी करनी पड़ेगी।"

वीरवर नौकर हो गया।

वीरवर के परिवार में वह, उसकी स्त्री, उसका लड़का और उसकी लड़की थी।

वीरवर ने पहले दिन जब रात्रि में पहरेदारी की, तो उसे वेतन में एक हज़ार अशर्फियाँ मिल गईं।

वीरवर ने आधी अशर्फियाँ साधु-संन्यासियों में बाँट दी। जो बची, उनमें से फिर आधी गरीबों और दीन-दुखियों को दे दी। जो बची, उनमें से फिर आधी अंधों-लँगड़ों और अपाहिजों को दे दी। जो शेष रह गईं, उन्हें अपने खाने-पीने में खर्च किया।

वीरवर प्रतिदिन अपने वेतन को इसी प्रकार खर्च किया करता था।

वीरवर बड़ा धर्मात्मा था। वह धर्मात्मा होने के साथ ही साथ बड़ा कर्तव्यपालक और शूरवीर भी था।

वीरवर के समान ही उसकी स्त्री और सन्तानों में भी धर्म के

प्रति सदा प्रेम था। प्रेम, साहस, कर्त्तव्य-पालन ने वीरवर के घर को स्वर्ग बना दिया था।

रात का समय था। वीरवर हथियारों से लैस होकर पहरा दे रहा था। सहसा, दूर से किसी के रोने की आवाज़ आने लगी।

राजा की नींद खुल गई। उसने उस आवाज़ को सुनकर वीरवर को बुलाया। कहा, "वीरवर, पता तो लगाओ, यह कौन रो रहा है ?"

आधी रात का समय था। रोने की आवाज़ दूर—बड़ी दूर से आ रही थी। ऐसा लग रहा था, मानो किसी पर दुख की बिजली गिर पड़ी हो !

वीरवर राजा को प्रणाम कर, पता लगाने के लिए चल पड़ा।

राजा के मन में विचार कौंध उठा, "देखना चाहिए, वीरवर पता लगाता है या झूठ-मूठ बहाना बना देता है !"

राजा वेश बदलकर, वीरवर के पीछे-पीछे दबे पाँव चलने लगा।

वीरवर रोने की आवाज़ के सहारे, धीरे-धीरे आगे बढ़ने लगा। आखिर वह उस स्थान में जा पहुंचा, जहाँ एक स्त्री बैठी हुई, सकरुण स्वर में विलाप कर रही थी।

वीरवर ने उस स्त्री से प्रश्न किया, "माँ, तुम कौन हो ? रात में यहाँ बैठकर क्यों विलाप कर रही हो ?"

स्त्री ने रोते हुए उत्तर दिया, "क्या करोगे सुनकर ! मेरा दुख ऐसा है, जिसे कोई दूर नहीं कर सकता।"

वीरवर ने कहा, "माँ, तुम अपने मन का दुख बताओ तो। मैं तुम्हें वचन देता हूँ, तुम्हारे दुख को अवश्य दूर करूँगा।"

स्त्री ने जवाब दिया, "मेरे देश का राजा बड़ा धर्मात्मा है। मुझे दुख है, कल सूर्य डूबने के साथ ही साथ उसकी मृत्यु हो

जाऊँगी। मैं राज्य की राजलक्ष्मी हूँ। मुझे दुख है कि, राजा के मर जाने पर मैं कहाँ रहूँगी, क्योंकि उनके समान धर्मात्मा और प्रतापी राजा धरती पर कोई दूसरा नहीं है।"

स्त्री की आँखों से आँसुओं की धारा बहने लगी, वह रह-रह कर धरती को अपने आँसुओं से सींचने लगी।

वीरवर मन ही मन सोचने लगा। उसने सोचते-सोचते दूसरा प्रश्न किया, "माँ, क्या ऐसा कोई उपाय है जिससे राजा के प्राण बच सकते हैं?"

स्त्री ने जवाब दिया "हाँ है! सामने की पहाड़ी पर देवी का मन्दिर है। यदि कोई धर्म-प्रेमी मनुष्य उस मन्दिर में अपने पुत्र की बलि दे, तो राजा के प्राण बच सकते हैं।"

वीरवर बोल उठा, "माँ, तुम दुखी न हो! मैं इस काम को करूँगा। मैं राजा को अवश्य मरने से बचाऊँगा।"

वीरवर अपने घर की ओर चल पड़ा।

राजा ने छिपकर स्त्री और वीरवर की बातचीत सुनी। वह सुनकर, आश्चर्यचकित हो उठा। जब वीरवर अपने घर की ओर चला, तो राजा भी उसके पीछे-पीछे चल पड़ा।

वीरवर ने अपने घर पहुँचकर, अपनी स्त्री को जगा कर, उसे सब कुछ बताया। स्त्री जब तक कुछ उत्तर दे, उसके पहले ही लड़का, जो पास ही सो रहा था, बोल उठा, "पिताजी, यह तो बड़े पुण्य का काम है! आप जिस राजा का नमक खाते हैं, उसके प्राण बचाने के लिए आपको मेरा बलिदान अवश्य कर देना चाहिए। मैं सहर्ष मरने के लिए तैयार हूँ।"

वीरवर और उसकी स्त्री दोनों आश्चर्यचकित होकर लड़के के मुँह की ओर देखने लगे।

लड़के ने पुनः कहा, "पिताजी, एक न एक दिन तो मरना है ही! यह तो बड़ी अच्छी बात होगी, मैं किसी की भलाई में

मरूँगा। चलिए, देर न कीजिए। अच्छे और पवित्र काम में देर नहीं करनी चाहिए।"

वीरवर की स्त्री ने लड़के की ओर देखते हुए कहा, "तुम धन्य हो पुत्र! तुमने मेरी गोद में जन्म लेकर, मेरे जीवन को सार्थक बना दिया।"

वीरवर की पुत्री भी बोली, "और मैं भी तुम्हारे जैसा भाई पाकर धन्य हो गई भैया!"

वीरवर प्रसन्न हो उठा। वह अपने पूरे परिवार को लेकर, मन्दिर की ओर चल पड़ा।

राजा वीरवर के पीछे तो लगा ही हुआ था! वह भी उसके पीछे-पीछे मन्दिर की ओर चल पड़ा।

वीरवर ने मन्दिर में पहुँचकर, देवी की मूर्ति के सामने अपने लड़के को बिठा दिया। लड़का दोनों हाथ जोड़कर, सिर झुकाकर बैठ गया। वीरवर ने देखते ही देखते तलवार से उसका सिर काट-कर, देवी के चरणों पर चढ़ा दिया।

वीरवर की स्त्री का हृदय काँप उठा। उसने काँपती हुई वाणी में वीरवर से कहा, "स्वामी, जब बेटा ही नहीं रहा, तो मैं रहकर क्या करूँगी?"

वीरवर की स्त्री ने भी देखते ही देखते अपने हाथ में तलवार लेकर, अपना सिर काटकर गिरा दिया।

भाई और माँ की मृत्यु से वीरवर की पुत्री का हृदय काँप उठा। उसने वीरवर की ओर देखते हुए कहा, "पिताजी, जब भाई और माँ ही नहीं रहे, तो मैं ही रहकर क्या करूँगी?"

वीरवर की पुत्री ने भी अपने हाथों से ही अपना सिर काटकर गिरा दिया।

वीरवर अपनी स्त्री, पुत्र और पुत्री के बलिदान को देखकर काँप उठा। उसने सोचा, जब परिवार में कोई नहीं रहा, तो मैं ही

रहकर क्या करूँगा ?"

वीरवर ने भी तलवार से अपना मस्तक काटकर फेंक दिया।

वीरवर और उसके परिवार के बलिदान को देखकर राजा का हृदय काँप उठा। उसने सोचा, 'मुझे धिक्कार है ! मेरे प्राण को बचाने के लिए वीरवर-जैसा साहसी, वीर और कर्तव्य-पालक मनुष्य पूरे परिवार के साथ संसार से चला गया ! फिर अब मैं ही जीवित रहकर क्या करूँगा ?'

राजा भी अपना मस्तक काटने के लिए उद्यत हो उठा।

पर राजा अपना मस्तक काटे, उसके पहले ही देवी ने प्रकट होकर राजा का हाथ पकड़ लिया, कहा, "नहीं तुम अपना मस्तक मत काटो ! मैं तुम्हारी वीरता, शूरता और धर्म-प्रियता पर प्रसन्न हूँ। बोलो, तुम्हें क्या चाहिए ?"

राजा ने उत्तर दिया, "माँ, यदि तुम मुझ पर प्रसन्न हो, तो वीरवर और उसके कुटुम्ब को भी जीवित कर दो।"

देवी ने वीरवर और उसके कुटुम्ब को अमृत की वर्षा करके, जीवित कर दिया।

राजा का हृदय आनन्द और हर्ष से भर उठा। उसने वीरवर को हृदय से लगा लिया, उसे अपना आधा राज्य देकर सिपाही से राजा बना दिया।

वैताल ने विक्रमादित्य को पूरी कहानी सुनाकर प्रश्न किया, "महाराज, बताइए, वीरवर, राजा और वीरवर के कुटुम्बियों में आप किसे सर्वश्रेष्ठ कहेंगे ?"

विक्रमादित्य ने उत्तर दिया, "राजा को !"

वैताल ने पुनः प्रश्न किया, "आप वीरवर को सर्वश्रेष्ठ क्यों नहीं कहेंगे ?"

विक्रमादित्य ने उत्तर दिया, "वीरवर राजा का पहरेदार था। राजा का प्राण बचाना उसका धर्म और कर्तव्य था।

मरूँगा। चलिए, देर न कीजिए। अच्छे और पवित्र काम में देर नहीं करनी चाहिए।"

वीरवर की स्त्री ने लड़के की ओर देखते हुए कहा, "तुम धन्य हो पुत्र! तुमने मेरी गोद में जन्म लेकर, मेरे जीवन को सार्थक बना दिया।"

वीरवर की पुत्री भी बोली, "और मैं भी तुम्हारे जैसा भाई पाकर धन्य हो गई भैया!"

वीरवर प्रसन्न हो उठा। वह अपने पूरे परिवार को लेकर, मन्दिर की ओर चल पड़ा।

राजा वीरवर के पीछे तो लगा ही हुआ था! वह भी उसके पीछे-पीछे मन्दिर की ओर चल पड़ा।

वीरवर ने मन्दिर में पहुँचकर, देवी की मूर्ति के सामने अपने लड़के को बिठा दिया। लड़का दोनों हाथ जोड़कर, सिर झुकाकर बैठ गया। वीरवर ने देखते ही देखते तलवार से उसका सिर काट-कर, देवी के चरणों पर चढ़ा दिया।

वीरवर की स्त्री का हृदय काँप उठा। उसने काँपती हुई वाणी में वीरवर से कहा, "स्वामी, जब बेटा ही नहीं रहा, तो मैं रहकर क्या करूँगी?"

वीरवर की स्त्री ने भी देखते ही देखते अपने हाथ में तलवार लेकर, अपना सिर काटकर गिरा दिया।

भाई और माँ की मृत्यु से वीरवर की पुत्री का हृदय काँप उठा। उसने वीरवर की ओर देखते हुए कहा, "पिताजी, जब भाई और माँ ही नहीं रहे, तो मैं ही रहकर क्या करूँगी?"

वीरवर की पुत्री ने भी अपने हाथों से ही अपना सिर काटकर गिरा दिया।

वीरवर अपनी स्त्री, पुत्र और पुत्री के बलिदान को देखकर काँप उठा। उसने सोचा, जब परिवार में कोई नहीं रहा, तो मैं ही

रहकर क्या करूँगा ?"

वीरवर ने भी तलवार से अपना मस्तक काटकर फेंक दिया।

वीरवर और उसके परिवार के बलिदान को देखकर राजा का हृदय काँप उठा। उसने सोचा, 'मुझे धिक्कार है ! मेरे प्राण को बचाने के लिए वीरवर-जैसा साहसी, वीर और कर्त्तव्य-पालक मनुष्य पूरे परिवार के साथ संसार से चला गया ! फिर अब मैं ही जीवित रहकर क्या करूँगा ?'

राजा भी अपना मस्तक काटने के लिए उद्यत हो उठा।

पर राजा अपना मस्तक काटे, उसके पहले ही देवी ने प्रकट होकर राजा का हाथ पकड़ लिया, कहा, "नहीं तुम अपना मस्तक मत काटो ! मैं तुम्हारी वीरता, शूरता और धर्म-प्रियता पर प्रसन्न हूँ। बोलो, तुम्हें क्या चाहिए ?"

राजा ने उत्तर दिया, "माँ, यदि तुम मुझ पर प्रसन्न हो, तो वीरवर और उसके कुटुम्ब को भी जीवित कर दो।"

देवी ने वीरवर और उसके कुटुम्ब को अमृत की वर्षा करके, जीवित कर दिया।

राजा का हृदय आनन्द और हर्ष से भर उठा। उसने वीरवर को हृदय से लगा लिया, उसे अपना आधा राज्य देकर सिपाही से राजा बना दिया।

वैताल ने विक्रमादित्य को पूरी कहानी सुनाकर प्रश्न किया, "महाराज, बताइए, वीरवर, राजा और वीरवर के कुटुम्बियों में आप किसे सर्वश्रेष्ठ कहेंगे ?"

विक्रमादित्य ने उत्तर दिया, "राजा को !"

वैताल ने पुनः प्रश्न किया, "आप वीरवर को सर्वश्रेष्ठ क्यों नहीं कहेंगे ?"

विक्रमादित्य ने उत्तर दिया, "वीरवर राजा का पहरेदार था। राजा का प्राण बचाना उसका धर्म और कर्त्तव्य था।

"वीरवर के कुटुम्बियों के बलिदान में उनका अपना मोह थ
"पर राजा के बलिदान की भावना विशुद्ध धर्म से प्रेरित थ
अतः राजा को ही सर्वश्रेष्ठ कहना चाहिए।"

वैताल राजा के न्याय की प्रशसा करने लगा—पुनः पु
प्रशंसा करने लगा।

१७

दुष्टता का फल

बहुत दिनों पूर्व की बात है।

इलापुर नगर में एक सेठ रहता था। सेठ का नाम महाधन
था। महाधन के पास धन-दौलत, ज़मीन-जायदाद सब कुछ था
पर सन्तान नही थी। सेठ सन्तान के बिना बहुत दुखी रहा करत
था।

सेठ सन्तान के लिए तीर्थ-व्रत किया करता था। गरीबों,
दुखियो और ब्राह्मणो को दान-दक्षिणा दिया करता था।

भगवान की दया! सेठ के घर में एक लडके ने जन्म लिया।
सेठ ने बड़े चाव से लडके का नाम कर्णकीना रखा।

कर्णकीना धीरे-धीरे बड़ा हुआ, पढने लगा। सेठ ने उसका
नाम एक पाठशाला में लिखा दिया।

कर्णकीना और बड़ा हुआ। वह कुछ पढ-लिख भी गया।
उसकी बुरे लडकों से संगति हो गई। वह बुरे-बुरे कामों में फंस
गया—जुआ खेलने लगा, शराब पीने लगा।

कर्णकीना ज्यों-ज्यों बड़ा होने लगा, त्यों-त्यों उसकी बुरी
आदतों में पंख लगने लगे। वह दोनों हाथों से धन उड़ाने लगा,
अपने मां-बाप की मान-मर्यादा को कुचलने लगा।

सेठ मन ही मन बडा दुखी हुआ। उसके मन का दुख इतना

बढ़ा कि, उसने दम तोड़ दिया।

सेठ जब मर गया, तो कर्णकौना पूर्ण रूप से स्वतंत्र हो गया। वह बिना किसी डर के बुरे रास्ते पर दौड़ने लगा, बुरे कामों में रुपया पानी की तरह खर्च करने लगा।

इसका फल यह हुआ कि कर्णकौना कंगाल हो गया। वह कौड़ी-कौड़ी के लिए मुहताज बन गया। यहाँ तक कि, रोटियों के भी लाले पड़ गए।

कर्णकौना जब भूखों मरने लगा, तो घर-द्वार छोड़कर परदेश के लिए निकल पड़ा। वह घूमता-घामता चन्द्रपुर में पहुँचा।

चन्द्रपुर में एक धनी सेठ रहता था। उसका नाम हेमगुप्त था। उसकी एक लड़की थी। लड़की का नाम रत्नावली था। वह विवाह के योग्य हो गई थी। हेमगुप्त उसके विवाह के लिए वर खोज रहा था।

कर्णकौना इधर-उधर चक्कर काटता हुआ हेमगुप्त के पास पहुँचा। उसने अपना और अपने पिता का नाम बताकर कहा, "मैं जहाज पर माल लादकर व्यापार के लिए निकला था, पर मेरा जहाज समुद्र में डूब गया। मेरे पास अब कुछ भी नहीं रह गया है। खाली हाथ घर लौटने में लज्जा लग रही है। अतः आपकी दया और शरण चाहता हूँ।"

कर्णकौना सूरत-शक्ल का अच्छा था। उसकी कहानी सुनकर हेमगुप्त के मन में दया उत्पन्न हो उठी। उसने कर्णकौना को अपने घर में रख लिया।

कर्णकौना बड़े सुख-चैन से हेमगुप्त के घर में रहने लगा।

हेमगुप्त ने सोचा, 'कर्णकौना देखने-सुनने में अच्छा है। उसका बाप बहुत बड़ा धनी है। क्यों न उसके साथ अपनी लड़की का विवाह कर दिया जाए?'

हेमगुप्त ने इस सम्बन्ध में अपनी स्त्री से राय-सलाह की।

रत्नावली को इसमें आपत्ति ही क्या होती? उसने अपने सभी गहने उतारकर कर्णकीना को दे दिए।

पर कर्णकीना के मन में तो बुराई थी। कुछ आगे बढने पर उसने कहारों को तो मार-पीटकर भगा दिया, और रत्नावली को, उसकी दासी सहित कुएँ में ढकेल दिया। स्वयं सारे गहने लेकर चम्पत हो गया।

कर्णकीना घर पहुँचकर फिर बुरे कामों में धन खर्च करने लगा।

उधर रत्नावली कुएँ में गिरने पर भी मरने से बच गई। उसकी दासी भी बच गई। कुआँ पुराना था। उसमें पानी बिलकुल नहीं था। भीतर घास-फूस और छोटे-छोटे पौदे उगे हुए थे।

रत्नावली कुएँ में गिरने पर, जोर-जोर से विलाप करने लगी। 'बचाओ, बचाओ' की आवाज आने लगी।

संयोग की बात, उधर से एक ऊँट-सवार निकला। वह 'बचाओ, बचाओ' की आवाज सुनकर कुएँ पर जा पहुँचा। उसने कुएँ में झाँककर देखा, तो भीतर दो स्त्रियाँ दिखाई पड़ी, जो रह-रहकर सकरुण स्वर मे विलाप कर रही थी।

ऊँट सवार के मन में दया पैदा हो उठी। उसने रत्नावली और उसकी दासी को कुएँ से बाहर निकाल दिया।

रत्नावली ने ऊँट-सवार से कहा, "मैं चन्द्रपुर के हेमगुप्त की लडकी हूँ। मैं अपने पति के साथ ससुराल जा रही थी। अचानक डाकुओं ने हम पर हमला कर दिया। डाकुओं ने हमें तो कुएँ में ढकेल दिया, पर हमारे पति को माल-असबाब सहित अपने साथ ले गए।"

ऊँट-सवार ने रत्नावली को हेमगुप्त के घर पहुँचा दिया।

रत्नावली ने अपने माता-पिता से वही बात कही, जो ऊँट-सवार से कही थी।

हेमगुप्त को बड़ा दुख हुआ था। उसने कहा, "बेटी, तुम गहनों-कपडों की चिन्ता न करो! रही बात तुम्हारे पति की! यदि डाकू तुम्हारे पति को ले गए हैं, तो एक न एक दिन वे धन मांगने मेरे पास अवश्य आयेंगे। जब वे धन मांगने के लिए आयेंगे, तो मैं उन्हे धन देकर तुम्हारे पति को छुड़ा लूंगा।"

रत्नावली करती तो क्या करती? वह धैर्य धरकर अपने पिता के घर रहने लगी।

उधर कर्णकीना ने बुरे कामों में, रत्नावली के सारे ज़ेवर उड़ा दिए। वह फिर पहले की तरह कगाल हो गया, फिर पहले की तरह भूखों मरने लगा।

कर्णकीना ने फिर एक दूसरा जाल रचा। उसने सोचा, फिर हेमगुप्त के पास चलकर उसे फांसना चाहिए, क्योंकि उसे तो यह मालूम था कि, उसने रत्नावली को कुएँ में ढकेल दिया है। अवश्य रत्नावली कुएँ में गिरकर मर गई होगी! उसे क्या पता था कि रत्नावली जीवित है, अपने पिता के घर पहुंच गई है।

कर्णकीना फिर हेमगुप्त के घर पहुंचा। उसने सोचा था, वह हेमगुप्त से कहेगा, उसके नाती पैदा हुआ! नाती पैदा होने की खुशी में वह अवश्य, बहुत-सा माल-असबाब उसे उपहार में देगा।

पर कर्णकीना हेमगुप्त से मिले, इसके पहले ही रत्नावली ने उसे देख लिया। उसने उसे अपने पास बुलाकर कहा, "देखिए, जो कुछ हुआ, उसे भूल जाइए। हमने अपने माता-पिता से यह नही कहा है कि, आपने हमे कुएँ में ढकेल दिया था; बल्कि यह कहा है कि, डाकुओं ने हमला करके हमारा माल-असबाब छीन लिया। हमें तो कुएँ मे ढकेल दिया, पर आपको पकड़कर अपने साथ ले गए हैं। आप भी मेरे माता-पिता से, कुछ और न कहकर, यही कहेंगे।"

कर्णकौना का हृदय मानों उछल पड़ा। उसने रत्नावली की प्रशंसा करते हुए कहा, "सचमुच तू लक्ष्मी है, पूजने योग्य है।"

कर्णकौना जब हेमगुप्त से मिला, तो उसने उससे वे ही सभी बातें कहीं, जो उसे रत्नावली ने सिखाई थीं। हेमगुप्त की प्रसन्नता की सीमा नहीं थी। कर्णकौना के लौट आने के कारण, उसके हृदय में हर्ष का सागर उछलने लगा।

कर्णकौना फिर हेमगुप्त के घर में रहने लगा। उसका फिर वही आदर-सत्कार, उसकी फिर वही सेवा-टहल! कर्णकौना के दिन बड़े सुख-आराम के साथ बीतने लगे।

पर कर्णकौना के मन में बुराई और दुष्टता ज्यों की त्यों बनी हुई थी। यद्यपि रत्नावली ने उसके साथ सज्जनता का बर्ताव किया, पर फिर भी उसके मन की वह दुष्टता न गई, जो उसके मन के भीतर थी।

रात का समय था। कर्णकौना रत्नावली के पास सो रहा था। उसके मन की दुष्टता जाग उठी। वह चुपके से उठा, रत्नावली के सारे जेवर लेकर चम्पत हो गया।

पर कर्णकौना ज्यों ही वन के भीतर पहुंचा, उसे सिंह ने फाड़-कर खा डाला।

वैताल ने विक्रमादित्य को पूरी कहानी सुनाकर प्रश्न किया, "महाराज, बताइए, कर्णकौना और रत्नावली दोनों में दोष किसका अधिक है?"

महाराज विक्रमादित्य ने उत्तर दिया, "दोष दोनों का है। कर्णकौना का दोष है उसकी दुष्टता, पर रत्नावली का दोष यह है कि, उसने दुष्ट का विश्वास किया!"

वैताल विक्रमादित्य के विचार सुनकर प्रसन्न हो उठा—अधिक प्रसन्न हो उठा।

धोबी की स्त्री

एक नगर में एक राजा राज करता था। राजा का नाम धर्मशील और उसके मंत्री का नाम अभय था।

धर्मशील बड़ा धर्मात्मा था, पर उसको कोई सन्तान नहीं थी। वह सन्तान के बिना बहुत दुखी रहा करता था।

एक दिन मंत्री ने राजा से कहा, "महाराज, माँ दुर्गा की पूजा-आराधना करने से आदमी को सब कुछ मिल जाता है। आप दुर्गा का एक मन्दिर बनवाकर, उनकी पूजा-आराधना करें, आपकी कामना अवश्य पूर्ण होगी।"

मंत्री की बात राजा को जँच गई। वह दुर्गा माँ का मन्दिर बनवाकर, उनकी पूजा-आराधना में लग गया।

दो-तीन वर्ष बीत गए।

एक दिन रात का समय था। राजा मन्दिर में दुर्गा के ध्यान में डूबा हुआ था। उसकी आँखों से आँसू बह रहे थे। अचानक राजा के कानों में आवाज़ गूँज उठी, "राजा, मैं तुम्हारी सेवा-भक्ति से खुश एवं प्रसन्न हूँ। बोलो, तुम्हें क्या चाहिए ?"

यह आवाज़ दुर्गा माँ की थी।

राजा ने आँखें खोलकर देखा, चारों ओर एक सुन्दर प्रकाश फैला हुआ था।

राजा ने सिर झुकाकर, दोनों हाथ जोड़कर कहा, "माँ, मेरे पास धन-दौलत सब कुछ है। बस, एक पुत्र नहीं है। कृपा करके मुझे एक पुत्र दे दो।"

मन्दिर में आवाज़ गूँज उठी, "तथास्तु ! राजा, तुम्हारे घर में महाबली पुत्र का जन्म होगा।"

मां दुर्गा के आशीर्वाद से सचमुच राजा के घर में एक तेजस्वी पुत्र ने जन्म लिया। राजा ने बाजे-गाजे के साथ मां दुर्गा की पूजा की। पूजा के बाद बहुत से गरीबों और ब्राह्मणों को भोजन दिया।

संयोग की बात, राजा जिस समय गरीबों और ब्राह्मणों को भोजन दे रहा था, एक धोबी का जवान लड़का उपस्थित हुआ। वह किसी दूसरे नगर का निवासी था, पर कुछ दिनों से उसी नगर में रह रहा था।

धोबी के लड़के ने एक आदमी से प्रश्न किया, "भाई, राजा उन गरीबों और ब्राह्मणों को भोजन क्यों दे रहा है ?"

उस आदमी ने जवाब दिया, "मां दुर्गा के आशीर्वाद से राजा के घर में पुत्र ने जन्म लिया है। राजा यह सब पुत्र-प्राप्ति की प्रसन्नता में कर रहा है ?"

धोबी के लड़के ने उस आदमी से दूसरा प्रश्न किया, "क्या मां दुर्गा के आशीर्वाद से मनुष्य की कामनाएं पूरी हो जाती हैं ?"

उस आदमी ने जवाब दिया, "हां, अवश्य पूरी हो जाती हैं।"

धोबी का लड़का मन ही मन सोच-विचार करने लगा।

बात यह थी कि धोबी का लड़का उसी नगर के एक धोबी की लड़की से विवाह करना चाहता था, पर वह किसी भी तरह विवाह करने के लिए तैयार नहीं हो रहा था।

धोबी के लड़के ने सोचा, "वह भी दुर्गा मां के मन्दिर में जाकर, क्यों न उनसे उनका आशीर्वाद मांगे ! कौन जाने, मां दुर्गा उसकी भी सुन लें !

धोबी का लड़का दुर्गा मां के मन्दिर में जा पहुंचा। उसने दुर्गा की मूर्ति के सामने खड़ा होकर हाथ जोड़कर कहा, "मां ! यदि तू मेरी मनोकामना पूर्ण कर दे, तो मैं तुझे अपने मस्तक की भेंट चढ़ाऊंगा।"

धोबी का लड़का अपने घर लौट गया।

घर लौटने पर भी उसके मन में धोबी की लड़की की या[द] बराबर बनी रही। वह उसकी याद में खाना-पीना और घर क[ा] काम-काज भी भूल गया। उसका शरीर धीरे-धीरे दुर्बल हो[ने] लगा।

एक ही लड़का था! धोबी को बड़ी चिन्ता हुई। उसने अप[ने] लड़के की बड़ी दवा-दारू की, पर कोई फल नहीं निकला।

आखिर, किसी तरह धोबी को लड़के की बीमारी के कारण का पता चल गया! उसने उससे उस लड़की के पिता का पता-ठिकाना मालूम किया, जिसके साथ वह विवाह करना चाहता था।

धोबी लड़की के पिता के घर जा पहुँचा। उसने अपने लड़के का सब हाल बताकर उससे निवेदन किया, "भाई, एक ही लड़का है। उसकी जान केवल तुम्हारी लड़की के साथ विवाह होने से ही बच सकती है। मुझ पर दया करो! अपनी लड़की का विवाह मेरे लड़के के साथ कर दो।"

दूसरे धोबी के मन में दया पैदा हो उठी। उसने पहले धोबी के लड़के के साथ अपनी लड़की का विवाह कर दिया।

धोबी का लड़का अपनी स्त्री को विदा कराकर, अपने घर ले गया, सुख से अपना जीवन बिताने लगा।

कई वर्ष बीत गए।

एक दिन अचानक धोबी के लड़के के पास ससुराल से निमंत्रण-पत्र आ गया। ससुराल में साले का विवाह हो रहा था। उसे बड़े आदरपूर्वक पत्नी-सहित बुलाया गया था।

धोबी का लड़का प्रसन्न हो उठा। वह अपनी पत्नी और एक मित्र के साथ ससुराल की ओर चल पड़ा।

धोबी का लड़का जब अपनी ससुराल के पास पहुँचा, तो नगर

के बाहर उसे दुर्गा का वही मन्दिर दिखाई पड़ा, जिस मन्दिर में उसने हाथ जोड़कर कहा था, "माँ ! यदि तू मेरी मनोकामना पूर्ण कर दे, तो मैं तुझे अपने मस्तक की भेंट चढ़ाऊंगा।"

धोबी के लड़के के हृदय के तार झनझना उठे। वह खड़ा होकर सोचने लगा, "माँ, दुर्गा के आशीर्वाद से मेरी मनोकामना तो पूर्ण हो गई, पर मैंने अपने वचन का पालन अब तक नहीं किया। मैं बड़ा पापी और कृतघ्न हूँ।

धोबी के लड़के ने अपने मित्र और पत्नी से कहा, "तुम दोनों यहीं रुको। मैं मन्दिर में माँ दुर्गा का दर्शन करने जा रहा हूँ।"

धोबी का लड़का मन्दिर में जा पहुँचा। उसने दुर्गा माँ की मूर्ति के सामने खड़े होकर, तलवार से अपना मस्तक काटकर उनके चरणों पर चढ़ा दिया।

जब धोबी के लड़के के लौटने में बहुत देर हो गई, तो लड़के के मित्र ने उसकी स्त्री से कहा, "तुम यहीं रुको ! मैं मन्दिर में जाकर देखता हूँ, मेरा मित्र अब तक लौटकर क्यों नहीं आया ?"

मित्र मन्दिर में जा पहुँचा। उसने देखा, तो धोबी के लड़के का मस्तक कटा हुआ पड़ा था।

मित्र अधिक चिन्तित और दुखी हो उठा। वह सोचने लगा, यह तो बड़ी बात हुई। लोग जब इस घटना को सुनेंगे, तो यही कहेंगे कि धोबी के लड़के की स्त्री से मेरा अनुचित सम्बन्ध था, और मैंने ही उसके पति की हत्या कर दी है। इस समय चारों ओर कितनी बदनामी होगी ! उस आदमी के जीवन से मर जाना ही अच्छा है !

मित्र की रगों में बिजली दौड़ गई। उसने अपना मस्तक काट डाला।

जब मित्र को भी लौटने में बड़ी देर हुई, तो धोबी की स्त्री

चिन्तित हो उठी। उसने सोचा, चलकर मन्दिर में देखना चाहिए, वे दोनों कहाँ गए ? अब तक लौटकर क्यों नहीं आये ?

धोबी की स्त्री मन्दिर में जा पहुँची। उसने वहाँ जाकर देखा, तो उसके पति और मित्र दोनों के मस्तक कटे हुए पड़े थे।

स्त्री दुःखी और चिन्तित हो उठी। वह मन ही मन सोचने लगी, यह तो बड़ा अनर्थ हुआ ! लोग जब इस बुरी घटना को सुनेंगे, तो यही कहेंगे कि, मैं बुरे चाल-चलन की हूँ। अपने पति और उसके मित्र की जान मैंने ही ली है। उस समय मेरी कितनी बदनामी होगी ! उस बदनामी के जीवन से तो यही अच्छा है, मैं भी अपने प्राण तज दूँ।

धोबी की स्त्री भी अपना मस्तक काटने के लिए उद्यत हो उठी।

पर धोबी की स्त्री अपना मस्तक काटे, उसके पहले ही माँ दुर्गा ने प्रकट होकर उसका हाथ पकड़ लिया, कहा, "पुत्री, इसकी आवश्यकता नहीं। मैं तुम पर बहुत प्रसन्न हूँ। बोलो, तुम्हें क्या चाहिए ?"

धोबी की स्त्री ने कहा, "माँ, यदि तू मुझ पर प्रसन्न है, तो मेरे स्वामी और उनके मित्र को जीवित कर दो।"

माँ दुर्गा ने स्त्री के पति और उसके मित्र को जीवित कर दिया।

तीनों हर्ष से पुलकित होकर माँ दुर्गा की प्रशंसा के गीत गाने लगे, बड़े प्रेम और भक्ति-भाव से गाने लगे।

वैताल ने महाराज विक्रमादित्य को पूरी कहानी सुनाकर प्रश्न किया, "महाराज बताइए, आप धोबी के लड़के, लड़के की पत्नी और लड़के के मित्र—तीनों में किसे सर्वश्रेष्ठ कहेंगे ?"

महाराज विक्रमादित्य ने उत्तर दिया, "लड़के के मित्र को।"

वैताल ने पुनः प्रश्न किया, "ऐसा क्यों महाराज ? क्या

धोबी का लड़का और उसकी पत्नी श्रेष्ठ नहीं हैं ?"

विक्रमादित्य ने उत्तर दिया, "है, पर सर्वश्रेष्ठ तो मित्र ही है। धोबी के लड़के ने दुर्गा माँ को वचन दिया था। उसने अपना बलिदान देकर अपने वचन का पालन किया। वचन पालन करना उसका अपना कर्त्तव्य था।

धोबी की स्त्री के बलिदान में भी यही बात थी।

पर मित्र नें तो अपना बलिदान देकर, एक ऊँचा आदर्श बनाया। उसका बलिदान उसकी ओर नही, सबकी ओर देखता है।"

बैताल विक्रमादित्य के विचारों को सुनकर उन पर मोहित हो उठा, मन-प्राण से मोहित हो उठा।

१६

स्वामी और सेवक

प्राचीन काल मे मिथिलावती नामक नगर मे एक राजा राज्य करता था। राजा का नाम गुणाधिप था। गुणाधिप बड़ा प्रतापी था। उसका नाम देश-विदेश में, चारों ओर फैला हुआ था।

दोपहर का समय था। गुणाधिप राजसभा मे सिंहासन पर विराजमान था, राज-काज मे सलग्न था। सहसा उसके सामने एक आदमी उपस्थित हुआ। उस आदमी का नाम विरमदेव था। वह एक साहसी और वीर राजपूत था।

विरमदेव ने हाथ जोड़कर, राजा से नौकरी के लिए प्रार्थना की। राजा ने उसे नौकरी तो दे दी, पर उससे और कुछ नहीं पूछा।

विरमदेव को नौकरी तो मिल गई, पर उसके मन को सन्तुष्टि नही हुई, क्योंकि वह राजा से और भी कुछ आवश्यक

बातें करना चाहता था।

विरमदेव ने राजा से बातचीत करने का कई बार प्रयत्न किया, पर उसे सफलता नहीं मिली।

प्रभात का समय था। राजा वन में आखेट के लिए जा रहा था। उसके साथ सिपाहियों का एक बहुत बड़ा दल था। विरमदेव भी उस दल में जा मिला। उसने सोचा, कदाचित् वन में उसे राजा से बातचीत करने का अवसर मिल जाय!

और विरमदेव का सोचना सत्य सिद्ध हुआ।

राजा जब वन में पहुँचा, तो उसकी दृष्टि एक मृग पर पड़ी। उसने अपना घोड़ा मृग के पीछे दौड़ा दिया।

मृग चौकडी भरने लगा—छलांगें मारने लगा। वह चौकड़ी भरता, छलांगें मारता हुआ दूर, बड़ी दूर निकल गया। राजा ने भी उसका पीछा नहीं छोड़ा। वह मृग के पीछे, दूर बड़ी दूर निकल गया। इतनी दूर निकल गया कि, उसके सभी संगी-साथी बहुत पीछे छूट गए।

राजा को मृग तो नहीं मिला, वह वन में रास्ता अवश्य भूल गया। वह वन मे इधर-उधर भटकने लगा, भूख-प्यास से व्याकुल हो उठा।

राजा ने सोचा, अब उसे इस वन में ही अपने प्राण छोड़ने पड़ेंगे।

इसी समय राजा के कानों में एक विनीत और कोमल वाणी पड़ी, "महाराज, घबराइए नहीं। मैं आपकी सेवा के लिए मौजूद हूँ।"

वह विनीत और कोमल वाणी विरमदेव की थी। विरमदेव ने जब राजा को मृग के पीछे घोडा दौड़ाते हुए देखा, तो अपना घोड़ा राजा के घोड़े के पीछे दौड़ा दिया था। वह राजा के पीछे-पीछे लगा हुआ था।

राजा ने विरमदेव की आवाज सुनकर उसकी ओर देखा और बड़े आश्चर्य के साथ कहा, "तुम !"

विरमदेव ने नम्रतापूर्वक उत्तर दिया, "हाँ महाराज, मैं आपका सेवक !"

विरमदेव राजा को पेड की छाया मे ले गया। उसे पानी पिलाकर, खाना खिलाकर सतुष्ट किया।

राजा प्रसन्न हो उठा। उसने विरमदेव की ओर देखते हुए कहा, "विरमदेव, तुम तो नौकरी में लगे हो, फिर शरीर से दुर्बल क्यो हो ?"

विरमदेव ने उत्तर दिया, "महाराज, जब मनुष्य की कामना पूर्ण नही होती तो, वह शरीर से दुर्बल हो जाता है।"

राजा ने दूसरा प्रश्न किया, "क्या तुम्हारी कोई ऐसी कामना है, जो पूर्ण नही हुई ?"

विरमदेव ने उत्तर दिया, "हाँ महाराज, मेरी एक कामना थी, जो आज तक पूर्ण नही हुई थी, पर आज मेरी वह कामना पूर्ण हो गई। अब मैं दुर्बल नही रहूँगा महाराज !

राजा आश्चर्यचकित हो उठा। उसने विरमदेव से फिर प्रश्न किया, "तुम्हारी कामना आज पूर्ण हो गई ! आखिर वह कौन-सी कामना थी, जो आज पूर्ण हुई ?"

विरमदेव ने जवाब दिया, "महाराज, मैं आपके प्रताप और यश को सुनकर इस दरबार मे उपस्थित हुआ था। नौकरी तो केवल एक बहाना थी। असल मे मैं आपसे वार्तालाप करना चाहता था। मैंने अनेक अवसर ढूंढे, पर आपसे वार्तालाप करने का अवसर नही मिल सका। ईश्वर की कृपा से वह अवसर आज मिला है महाराज !"

राजा प्रसन्न हो उठा। उसने विरमदेव की ओर देखते हुए कहा, "अच्छा तो आज मेरे साथ वार्तालाप करके, अपने मन की

कामना पूरी कर लो!"

विरमदेव ने राजा की आज्ञा पाकर, उसके साथ विविध विषयों पर वातचीत की।

जब वातचीत खतम हो गई, तो राजा ने विरमदेव से कहा, "अब तो तुम्हारी कामना पूर्ण हो चुकी! अब तुम मुझे राजधानी में पहुँचाओ।"

विरमदेव और राजा दोनों अपने-अपने घोड़े पर सवार हुए। आगे-आगे विरमदेव और पीछे-पीछे राजा। विरमदेव ने राजा को राजधानी में पहुँचा दिया।

राजा विरमदेव पर बड़ा प्रसन्न हुआ। उसे बहुत-सा धन पुरस्कार में देकर अपनी सेवा में नियुक्त कर लिया।

विरमदेव राजा के पास रहकर उसकी सेवा करने लगा।

धीरे-धीरे कई वर्ष बीत गए।

एक दिन राजा ने विरमदेव को एक विशेष कार्य से एक दूसरे नगर में भेजा। वह नगर समुद्र के किनारे था।

विरमदेव ने उस नगर में जाकर, बड़ी खूबी से राजा के कार्य को पूरा किया, फिर वह समय निकालकर, नगर देखने के लिए निकला।

विरमदेव घूमता-घूमता देवी के मन्दिर में पहुँचा। उसने मन्दिर में जाकर बड़े भक्ति-भाव से देवी की पूजा की।

विरमदेव जब मन्दिर के बाहर निकला, तो उसकी दृष्टि एक लड़की पर पड़ी।

लड़की बड़ी सुन्दर थी। विरमदेव ने मन-ही-मन सोचा, काश, उस लड़की के साथ उसका विवाह हो जाता!

विरमदेव ने उस लड़की से कहा, "तुम कौन हो? कहाँ रहती हो? यदि मैं तुम्हारे साथ विवाह करना चाहूँ, तो क्या तुम तैयार हो?"

लडकी ने जवाब दिया, "क्यो नही, पर मेरे साथ विवाह करने के लिए तुम्हे सामने के कुण्ड मे नहाना पडेगा।"

विरमदेव ने जवाब दिया, "यह कौन-सी बडी बात है! मैं अभी कुण्ड मे स्नान किए लेता हूं।"

विरमदेव कपड़े उतारकर कुण्ड में कूद पडा। लडकी बडे जोर से खिलखिलाकर हंस पडी।

आश्चर्य! विरमदेव जब कुण्ड से बाहर निकला, तो देखता है, वह अपने राजा की राजधानी मे खडा है।

विरमदेव का मन आश्चर्य से भर गया, पर हो क्या सकता था? अब तो वह बहुत दूर, अपने राजा की राजधानी मे था।

विरमदेव राजा की सेवा में उपस्थित हुआ। उसने इस आश्चर्यजनक घटना की चर्चा राजा से भी की।

राजा का भी मन आश्चर्य से भर गया। उसने विरमदेव से कहा, "तुम मुझे भी उस मन्दिर में ले चलो, जहा वह विस्मयजनक कुण्ड है।"

विरमदेव राजा को साथ मे लेकर फिर उस नगर की ओर लौट पडा।

कई महीने की यात्रा के बाद विरमदेव राजा के साथ मन्दिर पर उपस्थित हुआ। दोनो ने मन्दिर मे जाकर बड़े भक्ति-भाव से देवी की पूजा की।

दोनो जब मन्दिर से बाहर निकले, तो फिर वही लडकी दिखाई पड़ी। लड़की राजा को देखते ही उस पर मोहित हो गई। उसने राजा से कहा, "तुम कौन हो? कहां रहते हो? मैं तुम्हारे साथ विवाह करना चाहती हूं, क्या तुम इसके लिए तैयार हो?"

राजा ने जवाब दिया, "क्यो नहीं, पर तुम्हें मेरी बात माननी पडेगी।" जो मैं कहूंगा, वह करना पड़ेगा।"

लडकी ने कहा, "तुम जो कुछ कहोगे, मैं करूंगी।"

राजा ने कहा, "तो मेरी आज्ञा है, तुम मेरे सेवक विरमदेव के साथ विवाह करो।"

लड़की ने कहा, "पर यह कैसे हो सकता है ? मैं तो अपना विवाह तुम्हारे साथ करना चाहती हूँ।"

राजा ने कहा, "देखो, अच्छे मनुष्य वचन देकर छोड़ते नहीं हैं अभी-अभी तुमने कहा है—मैं जो कहूँगा, तुम उसे करोगी ! अगर तुम मुझसे पवित्र प्रेम करती हो, तो तुम्हे मेरी बात मानकर मेरे सेवक के साथ विवाह कर लेना चाहिए।"

लड़की विवश हो उठी ! उसने राजा की बात मानकर विरमदेव के साथ विवाह कर लिया।

विरमदेव राजा के चरणों में गिर पड़ा। उसने कहा, "महाराज, आप धन्य हैं। संसार में लोग धन और सुन्दर स्त्री के लिए बड़ी-बड़ी लड़ाइयाँ लड़ते हैं, पर आपने उसी को बिना किसी मोह के छोड़ दिया ! आप मनुष्य नहीं, देवता हैं।"

विरमदेव अपनी पत्नी और राजा के साथ राजधानी लौट गया। राजा ने उसे रहने के लिए महल, भोग के लिए धन, और चढ़ने के लिए हाथी-घोड़े प्रदान किए।

विरमदेव अपने कर्त्तव्यों का पालन करता हुआ सुख से जीवन व्यतीत करने लगा।

वैताल ने विक्रमादित्य को पूरी कहानी सुनाकर प्रश्न किया, "महाराज, बताइए, विरमदेव और राजा दोनों में किसका त्याग श्रेष्ठ है ?"

विक्रमादित्य ने उत्तर दिया, "विरमदेव का।"

वैताल ने आश्चर्य के साथ कहा, "ऐसा क्यों महाराज ? राजा ने सुन्दर स्त्री का त्याग किया। क्या उसके त्याग को श्रेष्ठ नहीं कहा जा सकता ?"

विक्रमादित्य ने उत्तर दिया, "नही। राजा समर्थ था। विरम-

देव का स्वामी था। स्वामी का कर्त्तव्य है, अपने सेवक की इच्छाओं को पूर्ण करे, उसके सुख के लिए बड़े से बड़ा त्याग करे।"

विरमदेव सेवक था—साधारण स्थिति का था! उसने राजा की भलाई, केवल भलाई की दृष्टि से की।"

बैताल मुग्ध हो उठा। उसने कहा, "महाराज, आप मनुष्य नहीं, देवता हैं।"

२०

धर्म-रक्षा

बहुत दिनों पूर्व की बात है।

बदरपुर में एक धनी बनिया रहता था। उसका नाम हिरण्य-दत्त था। उसको एक पुत्री थी। पुत्री का नाम मदनसेना था।

मदनसेना का विवाह पक्का हो गया था, पर अभी विवाहित नहीं हुई थी।

सन्ध्या के पहले का समय था। मदनसेना वाटिका में फूल चुनने गई थी। वहां पहले से ही एक युवक सैर कर रहा था।

युवक का नाम सोमदत्त था। वह भी एक धनी सेठ का पुत्र था।

सोमदत्त मदनसेना को देखकर, उस पर मोहित हो गया। उसने आगे बढ़कर उसका हाथ पकड़ लिया।

मदनसेना ने झटककर अपना हाथ छुड़ा लिया, सोमदत्त को डांटते हुए कहा, "लज्जा नहीं आती! पराई स्त्री का हाथ पकड़ रहे हो।"

सोमदत्त ने मदनसेना की ओर देखते हुए कहा, "मैं तुम्हारे साथ विवाह करना चाहता हूं, सब कुछ छोड़कर केवल तुम्हें

प्राप्त करना चाहता हूं।"

मदनसेना बोली, "विवाह कोई हंसी-खेल नहीं! विवा: लड़के-लड़कियां नहीं, माता-पिता निश्चित करते हैं। मैं तुम्हा साथ विवाह नहीं कर सकती।

"मैं विवश हूं।"

सोमदत्त बोला, "अगर तुम मेरे साथ विवाह नहीं करोगी तो मैं अपने प्राण दे दूंगा।"

सोमदत्त अपने हाथों से ही अपना गला काटने के लिए उद्यत हो उठा।

मदनसेना ने सोमदत्त का हाथ पकड़ लिया, कहा, "आत्म-हत्या नहीं करनी चाहिए। आत्महत्या बहुत बड़ा पाप है।"

मदनसेना संकट में पड़ गई, सोचने लगी, "करूं तो क्या करूं? इस बहके हुए युवक को सांत्वना दूं तो किस प्रकार दूं?"

मदनसेना ने सोचते हुए कहा, "देखो, मेरा विवाह पक्का हो चुका है। मैं तुम्हे वचन देती हूं, विवाह हो जाने पर, मैं तुमसे अवश्य मिलूंगी।"

मदनसेना युवक का पता-ठिकाना लेकर अपने घर चली गई।

सचमुच पांच-छः दिनों के बाद मदनसेना का विवाह हो गया। वह अपने ससुराल चली गई।

पर ससुराल में मदनसेना बड़ी उदास रहती थी। वह न तो पति से बातचीत करती थी, न उसे अपना शरीर छूने देती थी। वह उससे दूर-दूर रहने का प्रयत्न किया करती थी।

मदनसेना के पति को बड़ा आश्चर्य हुआ। उसने मदनसेना से पूछा, "मदनसेना, बात क्या है? मेरा तुम्हारे साथ विवाह हो चुका है। तुम मेरी पत्नी हो, फिर क्यों मुझसे दूर-दूर रहती हो? तुम मुझसे बातचीत क्यों नहीं करती?"

मद सेना ने सच्चे हृदय से अपने पति को सोमदत्त की कहानी

सुना दो। उसने कहा, "जब तक मैं अपने वचन के अनुसार सोमदत्त से एक बार मिल नहीं लूंगी, आपके साथ बातचीत नहीं कर सकती।"

मदनसेना का पति सोचने लगा। उसने सोचते-सोचते कहा, "मदनसेना, क्या तुम्हें इस बात की बिलकुल चिन्ता नहीं है कि, जब लोग इस कहानी को सुनेंगे, तो क्या कहेंगे? यदि तुम सोमदत्त से मिलने के लिए जाओगी, तो तुम्हारी बड़ी अप्रतिष्ठा होगी। हो सकता है, मैं भी तुम्हें छोड़ दूं।"

मदनसेना ने जवाब दिया, "मैं जानती हूं, पर प्रश्न है एक बिगड़े हुए युवक के जीवन का। मैं उसे अच्छे रास्ते पर लाना चाहती हूं। मेरी आपसे प्रार्थना है, उसके पास जाने की आज्ञा प्रदान करें।"

मदनसेना के पति ने सोचते हुए उसे सोमदत्त के पास जाने की अनुमति दे दी।

रात का समय था। मदनसेना गहनों-कपड़ों से सज्जित होकर, सोमदत्त के घर की ओर चल पड़ी।

संयोग की बात, रास्ते में एक चोर से भेंट हो गई। चोर गहनों-कपड़ों से सज्जित, अकेली मदनसेना को देखकर प्रसन्न हो उठा। बोला, "कुशल चाहती हो तो सारे गहने उतारकर रख दो! यदि शोर मचाओगी, तो मैं गला घोटकर सारे गहने छीन लूंगा।"

मदनसेना ने कहा, "नहीं-नहीं, ऐसा न करो! मैं अपने प्रेमी से मिलने जा रही हूं। यदि बिना गहनों के उसके पास जाऊंगी, तो उसे बड़ा दुख होगा। मैं वचन देती हूं, लौटती बार, तुम्हें सारे गहने दे दूंगी।"

चोर ने कहा, "वाह, मुझे झांसा-पट्टी दे रही हो! क्या विश्वास है कि तुम लौटकर आओगी?"

मदनसेना बोली, "मैं आर्य स्त्री हूं। आर्य स्त्रियां झूठ नहीं बोलतीं। मेरी बात पर विश्वास करो। मैं लौटूंगी, अवश्य लौटूंगी और अपने सारे गहने तुम्हें दे दूंगी।"

चोर आंखों में आश्चर्य भरकर मदनसेना की ओर देखने लगा। उसने बहुत-सी स्त्रियां देखी थीं, पर मदनसेना-जैसी स्त्री उसने आज पहली बार देखी थी।

चोर ने मदनसेना को छोड़ दिया। कहा, "तुम जा सकती हो ! जब तक न आओगी, मैं यहां बैठकर तुम्हारी राह देखूंगा।"

मदनसेना सोमदत्त के घर की ओर चल पड़ी।

मदनसेना सोमदत्त के घर जा पहुंची। वह अपने घर के बाहर, दरवाजे पर गहरी नींद में सो रहा था। उसे स्वप्न में भी आशा नहीं थी, मदनसेना इस तरह अपने वचन की रक्षा करेगी। वह उसे भूल चुका था, उससे मिलने की घटना को भी भूल चुका था।

मदनसेना ने सोमदत्त को जगाया।

सोमदत्त ने जाकर देखा, उसके सामने देवकन्या-सी स्त्री खड़ी है। वह आश्चर्य से भरकर बोल उठा, "मैं स्वप्न तो नहीं देख रहा हूं ! तुम कौन हो, स्वर्ग की अप्सरा, या देवबाला, या किन्नरी !"

मदनसेना ने उत्तर दिया, "मैं न तो देवबाला हूं, न स्वर्ग की अप्सरा, और न किन्नरी ? मैं हिरण्यदत्त की पुत्री, मदनसेना हूं। क्या तुम्हें याद नहीं है, वाटिका में तुमने मेरा हाथ पकड़ लिया था, कहा था, 'यदि मैं तुम्हारे साथ विवाह नहीं करूंगी, तो तुम अपने प्राण दे दोगे ! मैंने उस समय कहा था, तुम अपने प्राण न दो, मैं विवाह हो जाने पर तुमसे अवश्य मिलूंगी। मैं अपना वचन पूरा करने के लिए तुम्हारे पास आई हूं। बोलो, तुम क्या चाहते हो ?"

सोमदत्त चकित-विस्मित मदनसेना की ओर देखने लगा।

मदनसेना ने पुनः कहा, "क्या तुम्हें, अब भी विश्वास नहीं हो

रहा है, मैं हिरण्यदत्त की पुत्री वही मदनसेना हूं, जिसे तुम ने वाटिका में देखा था !"

सोमदत्त ने जवाब दिया, "विश्वास तो हो रहा है, पर इस बात पर विश्वास नहीं हो रहा है, जिस तरह तुमने अपने वचन का पालन किया है ! क्या इस तरह कोई स्त्री अपने वचन का पालन कर सकती है।"

मदनसेना ने कहा, "मैं भी तो एक स्त्री हूं। अब तो तुम्हें इस बात का विश्वास होना ही चाहिए कि, आर्य स्त्रियां अपना सब कुछ छोड़कर अपने वचन की रक्षा करती हैं।"

सोमदत्त मन ही मन सोचने लगा। उसने सोचते-सोचते कहा, "मदनसेना, क्या तुमने अपने पति को मेरे मिलने की घटना बता दी है ? क्या तू अपने पति से पूछकर, मेरे पास आई है ?"

मदनसेना ने जवाब दिया, "हां, मैंने अपने पति को तुमसे मिलने की घटना बता दी है ! मैं उनसे पूछ करके ही तुम्हारे पास आई हूं।"

सोमदत्त मन ही मन सोचने लगा।

सोमदत्त ने सोचते-सोचते कहा, "मदनसेना, जब मैंने पहली बार तुम्हें देखा था, तो मेरे मन में अवश्य बुराई पैदा हुई थी, पर अब जब मैं तुम्हें दूसरी बार देख रहा हूं, मेरी आंखें खुल गई हैं। मदनसेना, तुम तो देवी हो, पूजने योग्य हो ! मुझे क्षमा कर दो मदनसेना !"

मदनसेना ने कहा, "मैं तुम्हें क्षमा कर सकती हूं, पर तुम वचन दो, कभी किसी पराई स्त्री को बुरी दृष्टि से नहीं देखोगे।"

सोमदत्त मदनसेना के पैरों पर गिर पड़ा। उसने कहा, "मदनसेना, तुम्हारी सच्चाई ने मुझे सच्चाई का रास्ता दिखा दिया है। मैं प्रतिज्ञा करता हूं, अब किसी पराई स्त्री के साथ बुरा व्यवहार नहीं करूंगा।"

मदनसेना ने [illegible] [illegible] [illegible]

[illegible] [illegible] [illegible]

मदनसेना ने चोर के पास पहुँचकर कहा, "मैं अपने वचन के अनुसार तुम्हारे पास आ गई हूँ। अब तुम बड़ी आसानी से मेरे गहने उतार सकते हो।"

चोर हक्का-बक्का हो गया। [illegible] [illegible] आदमी [illegible] था, जो अपने आप उसके पास आ गया हो, और कह रहा हो—मेरे गहने उतार लो!

चोर आँखों में आश्चर्य भरकर मदनसेना की ओर देखने लगा।

चोर ने मदनसेना की ओर देखते-देखते कहा, "तुम कौन हो? देवी हो, या स्वर्ग की अप्सरा हो? तुम अपने आप चोर से कह रही हो—गहने उतार लो!"

मदनसेना ने जवाब दिया, "मैं न देवी हूँ, न अप्सरा हूँ! मैं तो एक मानवी हूँ। तुम्हें अवश्य मेरे गहनों की आवश्यकता होगी। आदमी बिना आवश्यकता के पाप नहीं करता। मैं तुम्हारी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए ही तुम्हें अपने गहने दे रही हूँ। आदमी का धर्म है, वह दूसरे आदमी के काम आए।"

चोर के हृदय के तार बज उठे। वह मदनसेना के पैरों पर गिरता हुआ बोला, "देवी, मुझे क्षमा कर दो। किसमें साहस है, जो तुम्हारे शरीर के गहनों को उतारे!"

मदनसेना ने कहा, "क्षमा कर सकती हूं, पर एक शर्त पर ! तुम प्रतिज्ञा करो, आज से कभी चोरी न करोगे ?"

चोर ने कान पकड़कर प्रतिज्ञा की, आज से कभी चोरी न करूंगा।

मदनसेना अपने पति के घर की ओर चल पड़ी। पति के पास पहुंचकर उसके चरण स्पर्श किए।

मदनसेना का मुखमण्डल तेज से उद्दीप्त हो रहा था। उसके तेज को देखकर उसका पति सब कुछ समझ गया। उसने कहा, "मदनसेना, तुम्हारे मुख का तेज कह रहा है तुमने अपने सत्य से उस युवक को सत्य-पथ का राही बना दिया है ! तुम धन्य हो मदनसेना ! तुम्हारी जैसी स्त्रियां ही संसार में देवी कही जाती हैं।"

वैताल ने विक्रमादित्य को पूरी कहानी सुनाकर प्रश्न किया, "महाराज बताइए, आप मदनसेना, उसके पति और चोर—तीनों में किसे श्रेष्ठ कहेंगे ?"

विक्रमादित्य ने उत्तर दिया, "चोर को, क्योंकि उसका त्याग बिना किसी लालच के था।"

वैताल प्रसन्न होकर विक्रमादित्य की प्रशंसा करने लगा—बहुत-बहुत प्रशंसा करने लगा।

२१
राजा की वीरता

प्राचीन काल में पुष्पपुर में एक राजा राज्य करता था। राजा का नाम वल्लभ और उसके मंत्री का नाम सत्यप्रकाश था। मंत्री की स्त्री का नाम लक्ष्मी था। लक्ष्मी सचमुच लक्ष्मी थी—रूप में भी, और गुणों में भी।

राजा बड़ा विलासी था। वह विलास और सुख-आनन्द ही सबसे बड़ा धर्म मानता था।

एक दिन राजा ने मंत्री से कहा, "मंत्री जी, आप राज-का[illegible] देखिए! मैं तो सब प्रकार से निश्चिन्त होकर, सुख-आनन्द [illegible] साथ जीवन बिताऊँगा।"

मंत्री करता तो क्या करता? वह राजा की आज्ञा शीश [illegible] धारण करके, राज-काज देखने लगा।

मंत्री दिन-रात राज-काज में फँसा रहता था। उसे खाने-पी[illegible] की भी सुध-बुध नहीं रहती थी। फलतः वह शरीर से बड़ा दुर्ब[illegible] हो गया। ऐसा लगने लगा, मानो उसे कोई बहुत बड़ा रोग [illegible] गया हो।

एक दिन मंत्री स्त्री ने उससे पूछा, "स्वामी, मैं देखती हूँ आपका शरीर दिनोदिन दुर्बल होता जा रहा है! आपको कोई रोग तो नहीं लगा है।"

मंत्री ने उत्तर दिया, "नहीं, मुझे कोई रोग नहीं लगा है। बात यह है कि, राजा मुझे राज-काज सौंपकर दिन-रात विलास में डूबा रहता है। मुझे राज-काज की सदा चिन्ता लगी रहती है। चिन्ता के ही कारण मेरा शरीर दुबला होता जा रहा है।"

लक्ष्मी बोली, "चिन्ता बड़ी बुरी बला होती है। चलिए, कुछ दिनों के लिए, तीर्थों में चलें! तीर्थों में आनन्द प्राप्त होगा, और चिन्ता भी न रहेगी।"

मंत्री ने अपनी पत्नी की बात मान ली।

मंत्री ने राजा की सेवा में उपस्थित होकर, उससे तीर्थ-यात्रा के लिए अनुमति माँगी। पहले तो राजा ने अस्वीकार कर दिया, पर जब मंत्रीने उसका ध्यान अपने शरीर की दुर्बलता की ओर आकृष्ट किया, तो उसने उसे तीर्थ-यात्रा के लिए आज्ञा दे दी।

मंत्री अपनी पत्नी के साथ तीर्थ-यात्रा के लिए निकल पड़ा।

मंत्री दक्षिण के तीर्थों में घूमता हुआ समुद्र के किनारे रामेश्वरम् पहुँचा।

दोपहर के पहले का समय था। मंत्री पूजा करने के बाद रामेश्वर के मंदिर से बाहर निकला। सहसा उसकी दृष्टि समुद्र की ओर जा पड़ी। उसने बड़े आश्चर्य के साथ देखा, समुद्र में एक हरा-हरा पेड़ उगा हुआ है। उस पेड़ की डालों में हीरे, पन्ने और मोतियों के फल लगे हुए हैं। वृक्ष की एक डाल पर एक सुन्दर स्त्री बैठी हुई है, सुमधुर स्वरों में वीणा बजा रही है।"

मंत्री नेत्रों में आश्चर्य भरकर उस वृक्ष की ओर देखने लगा।

मंत्री को उस समय और आश्चर्य हुआ, जब उसने देखा, वृक्ष समुद्र के भीतर समा गया।

मंत्री अपने देश लौट गया। उसने राजा की सेवा में उपस्थित होकर, उस अनोखे पेड़ की चर्चा की, जिसे उसने समुद्र में देखा था।

राजा ने सुनकर कहा, "मंत्री जी, मुझे रामेश्वरम् ले चलिए। हो सकता है, उस पेड़ को देखने का सौभाग्य मुझे भी प्राप्त हो जाय।"

मंत्री अस्वीकार कैसे कर सकता था?" वह राजा के साथ पुनः रामेश्वरम् गया।

मंत्री और राजा जब पूजा करने के बाद मन्दिर से बाहर निकले, तो समुद्र में फिर वही पेड़ दिखाई पड़ा। मंत्री तो चकित-विस्मित होकर उस पेड़ की ओर देखने लगा, पर राजा समुद्र में कूद पड़ा। वह तैरता हुआ शीघ्र ही उस पेड के पास जा पहुँचा और पेड़ की डाल पकड़कर लटक गया।

पेड़ जब समुद्र के भीतर समाया, तो पेड़ की डाल के साथ ही साथ राजा भी समा गया।

समुद्र के भीतर एक बहुत बड़ा महल था। पेड़ महल के

दरवाजे पर खड़ा हुआ। पेड़ की डाल पर बैठी हुई स्त्री नीचे उतरी। उसके साथ ही साथ राजा भी नीचे उतरा।

स्त्री जब महल के भीतर जाने लगी, तो राजा भी उसके पीछे-पीछे महल में घुस पड़ा।

स्त्री ने महल के भीतर जाकर, राजा से पूछा, "तुम कौन हो? यहाँ किसलिए आये हो?"

राजा ने उत्तर दिया, "मैं पुण्यपुर का नृपति हूँ। मैं तुम्हारे साथ विवाह करने के उद्देश्य से यहाँ उपस्थित हुआ हूँ।"

स्त्री ने उत्तर दिया, "राजन्, आप एक वीर पुरुष हैं। मुझे अनेक मनुष्यों ने देखा, पर आपकी तरह यहाँ आने का साहस किसी ने नहीं किया। मैं आपके साथ विवाह कर सकती हूँ, पर मेरी एक शर्त है।"

राजा ने पूछा, "क्या शर्त है तुम्हारी?"

स्त्री ने जवाब दिया, "कृष्णपक्ष की चतुर्दशी की रात में, आप मुझे अकेली छोड़ देंगे।"

राजा ने स्त्री की शर्त स्वीकार कर ली।

राजा और स्त्री दोनों विवाह-बंधन में बंध गए। दोनों पति-पत्नी के रूप में सुखपूर्वक उस महल में रहने लगे।

कुछ दिनों के पश्चात् ही, कृष्णपक्ष की चतुर्दशी की रात आ पहुँची। स्त्री ने राजा से कहा, "महाराज, आज की रात चतुर्दशी की रात होगी! आपको याद है न शर्त?"

राजा ने उत्तर दिया, "हाँ याद है। आज मैं तुमसे अलग रहूँगा।"

राजा ने रात में स्त्री को अकेली छोड़ दिया।

राजा चुपचाप, हाथ में तलवार लेकर, स्त्री के कमरे में छिपकर बैठ गया।

आधी रात बीत गई थी। सहसा एक राक्षस स्त्री के कमरे

में प्रविष्ट हुआ। वह स्त्री के पास जाकर, उससे प्रेम की बातचीत करने लगा।

राजा हाथ मे तलवार संभालकर खड़ा हो गया। उसने राक्षस को डांटते हुए कहा, "खबरदार, यह मेरी विवाहिता पत्नी है! तू इसके साथ इस प्रकार प्रेमालाप नही कर सकता।"

राक्षस क्रोधित हो उठा। वह उस स्त्री को पूर्ण रूप से अपनी मानता था। वह ताल ठोककर राजा पर झपट पड़ा, पर वह राजा के पास पहुंचे उसके पहले ही राजा ने तलवार से उसका मस्तक उडा दिया।

राक्षस निर्जीव होकर, भूमि पर गिर पडा। स्त्री और राजा दोनों प्रसन्न हो उठे।

राजा ने स्त्री से पूछा, "यह राक्षस कौन था? यह तुम्हारे पास चतुर्दशी रात में ही क्यो आता था?"

स्त्री ने उत्तर दिया, "मैं एक गधर्व कन्या हूं। मेरा नाम सुन्दरी है। मैं दिन-रात अपने रुग्ण पिता की सेवा मे लगी रहती थी। एक दिन किसी कारणवश सेवा मे त्रुटि हो गई। बस, उन्होने शाप दे दिया, 'तुझे राक्षस चतुर्दशी की रात में अपनी प्रियतमा बनायेगा।'

"जब मैं बहुत रोई-गिड़गिड़ाई, तो उन्होने फिर कहा, 'एक वीर पुरुष आयेगा। वह उस राक्षस से तुझे मुक्ति दिलायेगा।'

"महाराज, पिता के शाप के ही कारक राक्षस प्रति कृष्णपक्ष की रात में मेरे पास आया करता था। पिता के वरदान के ही कारण आप मुझे प्राप्त हुए हैं।"

राजा के हृदय मे हर्ष का सागर उमड़ उठा। यह जानकर, कि उसकी स्त्री गधर्व पुत्री है, राजा बहुत ही हर्षित हुआ।

राजा कुछ दिनों तक उसी महल मे रहा। इसके बाद वह अपनी पत्नी के साथ अपनी राजधानी मे गया।

राजा के अभाव में राजधानी में सन्नाटा छाया हुआ था। मंत्री, सेनापति, कर्मचारी, प्रजा आदि सभी बहुत दुखी थे। राजा को पाकर सबके हृदय में हर्ष का सागर उछलने लगा। सब दान-पुण्य और यज्ञ-याग करने लगे। स्वयं राजा ने भी बहुत अधिक दान-पुण्य किया, यज्ञ-याग किया।

राजा अपनी पत्नी के साथ सुखपूर्वक जीवन व्यतीत करने लगा।

कई वर्ष बीत गए। एक दिन राजा की पत्नी ने कहा, "महाराज, मुझे अपने पिता को देखे हुए बहुत दिन हो गए। यदि आपकी आज्ञा हो तो, मैं गंधर्व-लोक में जाकर अपने पिता के दर्शन करूं।"

राजा ने अपनी पत्नी को गंधर्व-लोक में जाने की अनुमति दे दी।

पर राजा की पत्नी गंधर्व-लोक नहीं गई। उसके विचार बदल गए। उसने कहा, "महाराज, अब मैं कहीं नहीं जाऊंगी। अब मैं सदा आपके पास रहूंगी।"

राजा के मन में आश्चर्य पैदा हो उठा। उसने आश्चर्य के साथ कहा, "आश्चर्य है! अभी तो तुम मुझसे गंधर्व-लोक में जाकर अपने पिता को देखने के लिए अनुमति मांग रही थी, पर अब मैंने तुम्हें जाने की अनुमति दे दी, तब तुम कह रही हो, अब नहीं जाऊंगी!"

राजा की पत्नी ने उत्तर दिया, "हां महाराज, पहले मेरा विचार गन्धर्व-लोक जाने का था, पर अब नहीं है। महाराज, मैं गन्धर्व-कन्या हूं। मैं गंधर्व-लोक जाऊंगी, तो हो सकता है, मेरा विचार पृथ्वी पर लौटने का न रहे! महाराज, गंधर्व-लोक में मुझे सब कुछ मिल जायेगा पर आप-जैसा वीर और साहसी पुरुष नहीं मिलेगा। मैं गंधर्व-लोक को छोड़ सकती हूं महाराज, पर

मुझसे आपको न छोड़ा जा सकेगा—नहीं छोड़ा जा सकेगा।"

पत्नी राजा के चरणों पर गिर पड़ी।

राजा ने अपनी पत्नी को बड़े प्रेम से उठाया, उसे अपने हृदय से लगा लिया। राजा इतना प्रसन्न हुआ—इतना प्रसन्न हुआ, मानो पत्नी के रूप में उसे स्वर्ग मिल गया हो।

वैताल ने विक्रमादित्य को पूरी कहानी सुनाकर प्रश्न किया, "महाराज, बताइए, आप राजा और मंत्री दोनों में से किसे श्रेष्ठ कहेंगे?"

विक्रमादित्य ने उत्तर दिया, "मंत्री को; क्योंकि उसने अपने कर्तव्य-पालन में बड़े-बड़े कष्ट उठाए थे।"

वैताल प्रसन्न हो उठा—हर्ष-विभोर हो उठा।

२२
चोर की पत्नी

प्राचीन काल में चन्द्रपुर नामक एक नगर था। उस नगर में एक राजा राज्य करता था। राजा का नाम वरवीर था। वरवीर बड़ा प्रतापी था। उसका नाम और यश दूर-दूर तक फैला हुआ था।

चन्द्रपुर धनी नगर था। बड़े-बड़े सेठ-साहूकार रहते थे। उन्हीं सेठों में एक का नाम धर्मदास था। धर्मदास के पास बहुत ज्यादा धन था। वह सेठों का मुखिया कहा जाता था।

धर्मदास की एक पुत्री थी। पुत्री का नाम शोभनी था। वह विवाह के योग्य हो गई थी।

भगवान की इच्छा! चन्द्रपुर में, रात में बड़ी-बड़ी चोरियाँ होने लगीं।

नगर के लोगों ने चोरियों को बंद करने के लिए बड़े-बड़े

उपाय किए, पर चोरियां बन्द न हुई।

ज्यों-ज्यों दिन बीतने लगे, चोरियाँ बढ़ने लगी। नगर के लोग चोरियों से तंग आ गए। आखिर नगर के बड़े-बड़े सेठ राजा की सेवा में उपस्थित हुए।

सेठों ने राजा से निवेदन किया, "महाराज, नगर में चारों ओर चोरों का उपद्रव बढ़ा हुआ है। हम रोज-रोज की चोरियों से तंग आ गए हैं। यदि इन चोरों को रोका नहीं गया, तो हम नगर को छोड़ देंगे, कहीं और चले जायेंगे।"

राजा ने सेठों को ढाढस बंधाया, "नहीं, नहीं, आप लोग इस तरह की बात न सोचें! हम नगर में कड़े पहरे का प्रबन्ध कर देंगे! चोरियां अब न होंगी।"

राजा ने चारों ओर कड़े पहरे का प्रबन्ध कर दिया। रात में चारों ओर सिपाही गश्त देने लगे, पर आश्चर्य, फिर भी चोरियां बन्द नहीं हुईं, पहले की भांति ही होती रहीं।

नगर के बड़े-बड़े सेठ पुन: राजा की सेवा में उपस्थित हुए, विनयपूर्वक बोले, "महाराज, आपने चारों ओर कड़े पहरे बिठा दिए हैं, पर फिर भी चोरियां बन्द नहीं हो रही हैं। जिस तरह पहले चोरियां हो रही थीं, उसी तरह अब भी हो रही हैं।"

राजा को बड़ा आश्चर्य हुआ। उसने सेठों को ढाढस बंधाते हुए कहा, "आप लोग बिलकुल भयभीत न हों! अब मैं स्वयं रात में पहरा दूंगा।"

रात का समय था। चारों ओर सन्नाटा छाया हुआ था। राजा वेश बदलकर, ढाल-तलवार लेकर पहरा देने के लिए निकल पड़ा।

राजा नगर में इधर-उधर सावधानी से घूमने लगा। सहसा राजा को एक आदमी दिखाई पड़ा। उस आदमी ने भी राजा को देखा। उसने राजा से प्रश्न किया, "तुम कौन हो? रात में

दबे पाँव क्यों इधर-उधर घूम रहे हो ?"

राजा ने उत्तर दिया, "भाई, मैं चोर हूँ। चोरी करने के लिए निकला हुआ हूँ।"

वह आदमी प्रसन्न हो उठा, बोला, "चलो, अच्छी बात हुई ! हम दोनों की भेंट हो गई। तुम चोर, मैं भी चोर ! चलो, अब अपना चमत्कार दिखाएँ।"

राजा मन ही मन प्रसन्न हो उठा। वह चोर के पीछे-पीछे चल पड़ा।

चोर राजा के साथ कई महलों में घुसा, बड़ी चालाकी से बहुत-सा धन और माल-असबाब उड़ा ले गया।

चोर सारा धन और माल-असबाब लेकर एक पुराने कुएँ पर उपस्थित हुआ। वह कुएँ से नीचे उतर पड़ा। उसके साथ ही साथ राजा भी उतर पड़ा।

कुएँ में एक सुरंग थी, जो पातालपुरी जाती थी। चोर सारा धन और माल-असबाब लेकर पातालपुरी जा पहुँचा। राजा भी उसके पीछे-पीछे पातालपुरी जा पहुँचा।

पातालपुरी में एक बहुत बड़ा महल था। चोर उसी महल में रहता था। वह प्रतिदिन रात मे निकलता था, राजा के नगर में जाकर चोरी किया करता था।

चोर राजा को अपने महल के दरवाजे पर खड़ा करके, स्वयं भीतर चला गया, राजा से कह गया, वह बाहर खड़ा रहे। कुछ देर बाद वह आयेगा, उसका प्रबंध करेगा।

संयोग की बात, महल के भीतर से एक स्त्री निकली। वह चोर की दासी थी। वह राजा के नगर की ही रहने वाली थी। चोर उसे उड़ा लाया था।

दासी राजा को देखते ही पहचान गई, बोली, "महाराज, आप यहाँ कहाँ ? यह तो राक्षसों की नगरी है। चोर बहुत बड़ा

राक्षस है। वह अभी आयेगा, आपको मार डालेगा। आप शीघ्र से शीघ्र यहां से चले जाइए।"

राजा ने उत्तर दिया, "पर जाऊं तो किस रास्ते से जाऊं? मुझे रास्ता तो मालूम ही नहीं है।"

दासी ने राजा को रास्ता बता दिया।

राजा पातालपुरी से अपने नगर में पहुंचा।

राजा बड़ा वीर था। उसे अब पता चल गया था, कौन है जो प्रतिदिन रात में उसके नगर में चोरी करता है, उसकी प्रजा को लूटता है।

राजा चोर को पकड़ने और उसे दण्ड देने के लिए व्यग्र हो उठा।

राजा सैनिकों के एक दल के साथ, कुएं की सुरंग के रास्ते से फिर पातालपुरी जा पहुंचा। उसने चोर के महल को चारों ओर से घेर लिया।

पर चोर गुप्त मार्ग से निकल गया, पातालपुरी के राजा की सेवा में उपस्थित हुआ। वह एक बहुत बड़ा दैत्य था।

चोर ने अपने राजा से निवेदन किया, "महाराज, मुझे बचाइए! चन्द्रपुर के राजा ने, अपने सैनिकों के साथ मेरा महल घेर लिया है।"

दैत्य क्रुद्ध हो उठा, बोला, "अच्छा, राजा की यह मजाल! मैं अभी उसे धूलि में मिलाए दे रहा हूं।"

दैत्य अपने दल के साथ राजा पर टूट पड़ा। युद्ध होने लगा, बड़े जोरों से युद्ध होने लगा। दोनों ओर के सैनिक कट-कटकर गिरने लगे। दैत्य ने राजा को बन्दी बनाने के लिए बड़ा छलबल किया, पर वह सफल नहीं हुआ। वह स्वयं राजा के हाथों मारा गया।

राजा ने चोर को गिरफ्तार कर लिया।

राजा चोर को साथ में लेकर अपने नगर में पहुँचा। नगर की जनता ने उसकी जयजयकार की, उसकी वीरता पर मुग्ध होकर उस पर फूलों की वर्षा की।

राजा ने अपने सिपाहियों को आज्ञा दी, "चोर को अच्छे-अच्छे कपड़े पहनाकर, उसे ऊँट पर बिठाकर नगर में चारों ओर घुमाओ।"

राजा की आज्ञा का पालन किया गया। चोर को ऊँट की पीठ पर बिठाकर, नगर में चारों ओर घुमाया जाने लगा। ऊँट के आगे-आगे एक आदमी चल रहा था, जो डुग्गी पीट-पीटकर कहता जा रहा था, 'यही वह चोर है, जो नगर में चोरियाँ किया करता था, चालाकी से लोगों के घरों में घुस-घुसकर उन्हें लूटा करता था।'

ऊँट जिस ओर से निकलता था, डुग्गी की आवाज सुनकर, लोग चोर को देखने के लिए अपने-अपने घरों से निकल पड़ते थे। कोई चोर को देखकर उसे कोसता, कोई गालियाँ देता, और कोई इसके लिए दु:शाप निकालता था।

पर जब धर्मदास सेठ की पुत्री, शोभनी ने चोर को देखा, तो वह उस पर मोहित हो गई। उसके मन में विचार पैदा हुआ, 'काश, इसके साथ मेरा विवाह हो सकता है!'

चोर था तो चोर, पर देखने में बड़ा सुन्दर था, बड़ा स्वस्थ था। लगता था, मानो कोई सत्कुल-पुरुष हो।

शोभनी ने चोर को देखकर, अपने पिता से निवेदन किया, "पिताजी, आप इस चोर को छुड़ा लीजिए।"

धर्मदास ने उत्तर दिया, "तुम यह क्या कह रही हो? भला राजा, इस चोर को क्यों छोड़ने लगा? इसने नगर को लूटा है, राजा के सैनिकों पर हमला किया है! राजा इसे अवश्य शूली पर चढ़ायेगा!"

धर्मदास की पुत्री की आंखों में आंसू आ गए। उसने आंसू की बूंदें गिराते हुए कहा, "पिताजी, यदि इस चोर को फांसी हुई, तो मैं भी जीवित नहीं रहूंगी। राजा चाहे जितना भी धन ले, देकर इसे छुड़ा लीजिए।"

धर्मदास विवश हो उठा। उसकी एक ही बेटी थी। वह राजा की सेवा में उपस्थित हुआ, विनयपूर्वक बोला, "महाराज, आप चोर को छोड़ दें! आप जितना भी धन चाहें, मैं आपको दे सकता हूं, पर मेरी प्रार्थना है, आप चोर को फांसी न दें। उसे मुक्त कर दें।"

राजा को बड़ा आश्चर्य हुआ। उसने धर्मदास की ओर देखते हुए, बड़े आश्चर्य के साथ कहा, "धर्मदास, तुम यह क्या कह रहे हो? जिस चोर ने हमारे नगर को लूटा है, हमारी प्रजा को दुख दिया है, तुम उसे छोड़ देने के लिए कह रहे हो! यदि मैं उसे छोड़ दूं, तो मेरी प्रजा मुझे क्या कहेगी! मैं कदापि-कदापि चोर को नहीं छोड़ सकता।"

धर्मदास करता तो क्या करता? वह निराश होकर अपने घर लौट गया, पर उसकी बेटी निराश नहीं हुई। उसने कहा, "मैं चोर को अपना पति मान चुकी हूं। यदि राजा उसे शूली पर चढ़ायेगा, तो मैं भी अपने कर्त्तव्य-पालन से बाज नहीं आऊंगी। मैं उसके साथ सती हो जाऊंगी।"

धर्मदास ने अपनी पुत्री को बहुत समझाया पर उसने एक न सुनी। वह अपने विचार पर अड़ी रही, दृढ़ता से अड़ी रही।

किसी तरह चोर को भी यह बात मालूम हो गई कि, धर्मदास सेठ की पुत्री शोभनी उस पर मोहित है, वह उससे विवाह करना चाहती है। उसने उसे छुड़ाने के लिए प्रयत्न भी किए, पर वह सफल नहीं हो सकी।

उधर राजा ने चोर को नगर में, चारों ओर घुमाये जाने के

बाद फांसी पर लटकाने की आज्ञा दे दी।

चोर वध-स्थान पर ले जाया गया। उसे फांसी के तख्ते पर चढ़ाया गया। वह फांसी के तख्ते पर चढ़कर एक बार जोर से हंसा, और फिर रोया। इसके बाद डोरी खींच ली गई। चोर की जीवन-लीला समाप्त हो गई।

धर्मदास की पुत्री ने राजा से विनती-प्रार्थना करके चोर की लाश प्राप्त कर ली। वह चिता सजाकर, उसकी लाश के साथ चिता पर जा पहुंची, पर चिता से अग्नि की लपटें उठने के स्थान पर, मां दुर्गा प्रगट हुईं। उन्होंने शोभनी का हाथ पकड़कर, उसे चिता पर से उठाते हुए कहा, "बेटी, मैं तुम्हारे प्रेम पर प्रसन्न हूं। तुम क्या चाहती हो?"

शोभनी ने साश्रु-नयन उत्तर दिया, "मां, मैं कुछ नहीं चाहती। केवल अपने पति को चाहती हूं।"

मां दुर्गा ने चोर को जीवित कर दिया।

धर्मदास ने बड़े ठाट-बाट के साथ चोर के साथ अपनी पुत्री का विवाह कर दिया।

चोर फिर लौटकर पातालपुरी नहीं गया। वह बुरे कामों को छोड़कर श्रेष्ठ जीवन बिताने लगा।

बेताल ने विक्रमादित्य को पूरी कहानी सुनाकर प्रश्न किया, "महाराज, बताइए, फांसी के तख्ते पर चढ़ने पर चोर पहले हंसा क्यों था?"

विक्रमादित्य ने उत्तर दिया, "चोर ने जब यह सुना कि, धर्मदास की पुत्री एक ऐसे आदमी से प्रेम करती है जो सूली पर चढ़ रहा है, तो उसे उसकी मूर्खता पर बड़ी हंसी आई। उसने सोचा, धर्मदास की लड़की कितनी नादान है! वह नहीं समझ रही है कि, मैं उसके प्रेम या उसके उपकार का कोई मूल्य नहीं चुका सकता।"

वैताल ने दूसरा प्रश्न किया, "अब यह बताइए महाराज, चोर रोया क्यों था ?"

विक्रमादित्य ने उत्तर दिया, "चोर यह सोचकर बड़ा दुखी हुआ कि, धर्मदास की पुत्री एक ऐसे आदमी से प्रेम करती है, जो बड़ा घृणित है। घृणित आदमी से प्रेम करने के कारण भगवान न जाने उसे कैसा दण्ड देंगे ?"

महाराज विक्रमादित्य के विचारों को सुनकर वैताल प्रसन्न हो उठा। उसने कहा, "महाराज, आपके विचारों में जो ज्ञान है, जो न्याय है, उसकी प्रशंसा मनुष्य ही नहीं देवता भी करेंगे।"

सचमुच महाराज विक्रमादित्य के न्याय और ज्ञान की प्रशंसा देवता भी किया करते थे।

कई हजार वर्ष बीत गए हैं, पर महाराज विक्रमादित्य के ज्ञान और न्याय की कहानियां आज भी जनता में बड़े चाव से कही और सुनी जाती हैं।

युग पर युग बीतेंगे, पर महाराज विक्रमादित्य के न्याय और ज्ञान की कहानियां इसी प्रकार कही-सुनी जाती रहेंगी—सदा-सदा कही-सुनी जाती रहेंगी।

२३

धर्मव्रती राजा

चन्द्रनगर में एक धनी सेठ रहता था। सेठ का नाम रत्नदत्त था। रत्नदत्त की एक पुत्री थी। पुत्री का नाम उन्मादिनी था।

उन्मादिनी बड़ी सुलक्षणा, बड़ी गुणवती और बड़ी सुन्दर थी। रूप और गुणों में, उसके समान कोई देव-कन्या भी नहीं हो सकती थी।

उन्मादिनी जब बड़ी हुई, तो सेठ को उसके विवाह की

चिन्ता हुई।

सेठ ने सोचा, उन्मादिनी जैसी सुलक्षणा, गुणवती और सुन्दर पुत्री के लिए योग्य वर मिलना बहुत कठिन है। उसके लिए योग्य वर तो राजा ही हो सकता है। अतः उसका विवाह राजा के साथ ही करना चाहिए।

रत्नदत्त राजा की सेवा में उपस्थित हुआ, हाथ जोड़कर निवेदन किया, "महाराज, मेरी एक कन्या है, उन्मादिनी। वह बड़ी रूपवती, सुलक्षणा और गुणवती है। यदि आप उसके साथ अपना विवाह करें, तो वह आपके राजमहल की शोभा बन सकती है।"

राजा ने उत्तर दिया, "मैं विवाह कर सकता हूँ, पर पहले उसके गुणों और रूप-सौन्दर्य की जाँच-पड़ताल करूँगा।"

सेठ ने राजा की बात मान ली।

राजा ने अपनी दो-तीन चतुर दासियों को बुलाकर कहा, "सेठ रत्नदत्त के घर जाकर, उसकी लड़की को देखकर पता लगाओ, क्या वह सचमुच सुन्दरी और गुणवती है।"

राजा की दासियों ने रत्नदत्त के घर जाकर जब उन्मादिनी को देखा तो वे उसके रूप और गुण को देखकर सन्नाटे में आ गईं। वह रूप और गुण में सचमुच अद्वितीय थी। ऐसा लग रहा था, मानो वह देवकन्या हो।

पर उन्मादिनी को देखकर दासियों के मन में एक दूसरा विचार पैदा हुआ। उन्होंने सोचा, यदि उन्मादिनी से राजा का विवाह होगा, तो उसका मन उसके रूप-जाल में उलझ जायेगा। वह यथोचित रूप से अपने कर्त्तव्य का पालन नहीं कर सकेगा।

अतः दासियों ने राजा से झूठ बोलने का निश्चय किया।

दासियाँ जब लौटकर राजा के पास गईं, तो उन्होंने राजा से कहा, "महाराज, उन्मादिनी में न रूप है, न गुण है। वह तो एक

वैताल ने दूसरा प्रश्न किया, "अब यह बताइए महाराज, चोर रोया क्यों था ?"

विक्रमादित्य ने उत्तर दिया, "चोर यह सोचकर बड़ा दुखी हुआ कि, धर्मदास की पुत्री एक ऐसे आदमी से प्रेम करती है, जो बड़ा घृणित है। घृणित आदमी से प्रेम करने के कारण भगवान न जाने उसे कैसा दण्ड देंगे ?"

महाराज विक्रमादित्य के विचारों को सुनकर वैताल प्रसन्न हो उठा। उसने कहा, "महाराज, आपके विचारों में जो ज्ञान है, जो न्याय है, उसकी प्रशंसा मनुष्य ही नहीं देवता भी करेंगे।"

सचमुच महाराज विक्रमादित्य के न्याय और ज्ञान की प्रशंसा देवता भी किया करते थे।

कई हजार वर्ष बीत गए हैं, पर महाराज विक्रमादित्य के ज्ञान और न्याय की कहानियाँ आज भी जनता में बड़े चाव से कही और सुनी जाती हैं।

युग पर युग बीतेंगे, पर महाराज विक्रमादित्य के न्याय और ज्ञान की कहानियाँ इसी प्रकार कही-सुनी जाती रहेंगी—सदा-सदा कही-सुनी जाती रहेंगी।

२३

धर्मव्रती राजा

चन्द्रनगर में एक धनी सेठ रहता था। सेठ का नाम रत्नदत्त था। रत्नदत्त की एक पुत्री थी। पुत्री का नाम उन्मादिनी था।

उन्मादिनी बड़ी सुलक्षणा, बड़ी गुणवती और बड़ी सुन्दर थी। रूप और गुणों में, उसके समान कोई देव-कन्या भी नहीं हो सकती थी।

उन्मादिनी जब बड़ी हुई, तो सेठ को उसके विवाह की

चिन्ता हुई।

सेठ ने सोचा, उन्मादिनी जैसी सुलक्षणा, गुणवती और सुन्दर पुत्री के लिए योग्य वर मिलना बहुत कठिन है। उसके लिए योग्य वर तो राजा ही हो सकता है। अतः उसका विवाह राजा के साथ ही करना चाहिए।

रत्नदत्त राजा की सेवा में उपस्थित हुआ, हाथ जोड़कर निवेदन किया, "महाराज, मेरी एक कन्या है, उन्मादिनी। वह बड़ी रूपवती, सुलक्षणा और गुणवती है। यदि आप उसके साथ अपना विवाह करें, तो वह आपके राजमहल की शोभा बन सकती है।"

राजा ने उत्तर दिया, "मैं विवाह कर सकता हूं, पर पहले उसके गुणों और रूप-सौन्दर्य की जांच-पड़ताल करूंगा।"

सेठ ने राजा की बात मान ली।

राजा ने अपनी दो-तीन चतुर दासियों को बुलाकर कहा, "सेठ रत्नदत्त के घर जाकर, उसकी लड़की को देखकर पता लगाओ, क्या वह सचमुच सुन्दरी और गुणवती है।"

राजा की दासियों ने रत्नदत्त के घर जाकर जब उन्मादिनी को देखा तो वे उसके रूप और गुण को देखकर सन्नाटे में आ गईं। वह रूप और गुण में सचमुच अद्वितीय थी। ऐसा लग रहा था, मानो वह देवकन्या हो:

पर उन्मादिनी को देखकर दासियों के मन में एक दूसरा विचार पैदा हुआ। उन्होंने सोचा, यदि उन्मादिनी से राजा का विवाह होगा, तो उसका मन उसके रूप-जाल में उलझ जायेगा। वह यथोचित रूप में अपने कर्त्तव्य का पालन नहीं कर सकेगा।

अतः दासियों ने राजा से झूठ बोलने का निश्चय किया।

दासियां जब लौटकर राजा के पास गईं, तो उन्होंने राजा से कहा, "महाराज, उन्मादिनी में न रूप है, न गुण है। वह तो एक

फूहड़ लड़की है। वह आपके योग्य बिलकुल नहीं है।"

फलत: राजा ने उन्मादिनी के साथ विवाह करने से अस्वीकार कर दिया।

सेठ करता तो क्या करता? उसने अपनी लड़की के लिए एक दूसरा वर खोजा।

वह दूसरा वर राजा का सेनापति था। उसका नाम बलभद्र था।

उन्मादिनी और बलभद्र दोनों का विवाह हो गया। वह बलभद्र के घर जाकर रहने लगी।

कुछ महीने बीत गए, एक दिन संध्या के पहले का समय था। राजा घोड़े पर सवार होकर, बलभद्र के घर के सामने से निकल रहा था। हठात् उसकी दृष्टि बलभद्र के दरवाजे की ओर जा पड़ी। उसने देखा, चन्द्रमा की ज्योति-सी एक सुन्दर स्त्री घर के भीतर से बाहर निकलकर, दरवाजे पर खड़े भिक्षुक को भिक्षा दे रही है।"

वह स्त्री बलभद्र की पत्नी, उन्मादिनी थी।

राजा ने उन्मादिनी को देखकर, मन ही मन सोचा, 'काश वह स्त्री उसके महल की शोभा बनी होती!"

राजा ने अपने राजभवन में लौटकर, मंत्री से उस स्त्री के रूप-सौन्दर्य की भूरि-भूरि प्रशंसा की, कहा, "बलभद्र बड़ा सौभाग्यशाली है। उसकी सुन्दर पत्नी के कारण, उसका जीवन धन्य हो गया है।"

मंत्री ने निवेदन किया, "महाराज, बलभद्र की पत्नी तो सेठ रत्नदत्त की वही पुत्री है, जिसका विवाह वह आपके साथ करना चाहता था।"

राजा ने बड़े ही आश्चर्य के साथ कहा, "बलभद्र की पत्नी सेठ रत्नदत्त की पुत्री है! पर मेरी दासियों ने तो यह कहा था

कि, सेठ रत्नदत्त की लडकी एक फूहड लड़की है। उसमे रूप-गुण बिलकुल नही है।"

राजा ने शीघ्र ही दासियो को उपस्थित होने की आज्ञा दी।

दासियां जब राजा के सामने उपस्थित हुई, तो राजा ने उनकी ओर तीव्र दृष्टि से देखते हुए प्रश्न किया, "तुम सबने कहा था, रत्नदत्त की लडकी एक फूहड लडकी है। उसमे रूप-गुण बिलकुल नही है, पर उसका रूप तो चन्द्रमा को भी लज्जित करने वाला है। मैंने स्वय उसे अपनी आंखो से देखा है।"

दासियां भय से कांपने लगी।

राजा ने पुन. कहा, "तुम सबने मुझसे असत्य क्यो कहा? उस असत्य बोलने के अपराध के लिए, क्या तुम्हे दण्ड नही दिया जाना चाहिए?"

दासियो ने कांपती आवाज मे निवेदन किया, "महाराज, हम अपराधी है पर हमारे असत्य बोलने का एक बहुत बडा कारण था।"

राजा ने पूछा, "कौन-सा कारण था?"

दासियो ने निवेदन किया, "महाराज, सेठ रत्नदत्त की लडकी के अनुपम रूप और गुणो को देखकर हमने सोचा, यदि उसके साथ आपका विवाह हुआ, तो आप उसके रूप-जाल मे फंस जायेंगे, आप अपने कर्तव्य का पालन उचित रूप मे नही कर सकेंगे। महाराज, हमारे असत्य बोलने का कारण केवल प्रजा की भलाई है।"

राजा बुद्धिमान और न्यायी था। उसने दासियो को छोड़ दिया, पर उसके मन में इस बात का बहुत बडा दुख समा गया कि, वह उन्मादिनी-जैसी सुन्दर और गुणवती लड़की को पत्नी के रूप मे न पा सका।

ज्यो-ज्यो दिन बीतने लगे, राजा के मन का दु:ख बढने लगा।

राजा के मन का दुख इतना बढ़ा कि, वह बीमार पड़ गया, उसका खाना-पीना छूट गया।

राजा की हरएक प्रकार की चिकित्सा की गई, पर वह अच्छा नहीं हुआ। उसका शरीर धीरे-धीरे घुलने लगा, और भी अधिक घुलने लगा।

आखिर, राजा की बीमारी के असली कारण का पता मंत्री और सेनापति को चला। मंत्री तो मौन रह गया, पर सेनापति ने अपना कर्त्तव्य खोज लिया। उसने राजा के पास जाकर निवेदन किया, "महाराज, आप हमारे देश के प्रतापी और न्यायी राजा हैं। यदि आप शरीर छोड़ देंगे, तो देश अनाथ हो जायेगा।

"महाराज, मेरे लिए यह बड़े दुख और लज्जा की बात है कि, आप मेरी पत्नी के कारण बहुत दुःख पा रहे हैं। महाराज, मेरी पत्नी, आपकी पत्नी है। मैं उसे सहर्ष आपके हाथों में देने को तैयार हूं।"

राजा ने उत्तर दिया, "बलभद्र, तुम यह क्या कह रहे हो! तुम्हारी पत्नी के लिए मेरे मन में कामना अवश्य है, पर अब तो वह पराई है। पराई स्त्री को अपनी बनाना पाप ही नहीं, बहुत बड़ा पाप है।"

बलभद्र ने पुनः निवेदन किया, "महाराज, मैं आपका सेवक हूं। सेवक का धर्म है, वह अपने स्वामी की रक्षा करे। यदि स्वामी की रक्षा के लिए मान-मर्यादा भी छोड़नी पड़े, तो बिना किसी संकोच के छोड़ देनी चाहिए।"

राजा ने उत्तर दिया, "बलभद्र, तुम सेवक हो, तो मैं स्वामी हूं। यदि सेवक का धर्म है स्वामी की रक्षा करना, तो स्वामी का भी तो यह धर्म है कि वह अपने सेवक का पालन करे, उसका हर एक प्रकार से सरक्षण करे।"

बलभद्र ने राजा से बार-बार अनुनय-विनय की, बार-बार

आग्रह-अनुरोध किया, पर राजा ने उसके पत्नी-दान को स्वीकार नहीं किया—स्वीकार नहीं किया।

राजा ने अपना शरीर छोड़ दिया, पर धर्मव्रत नहीं छोड़ा। धर्मव्रत को न छोड़ने के कारण वह अमर हो गया—सदा के लिए अमर हो गया।

वैताल ने पूरी कहानी विक्रमादित्य को सुनाकर प्रश्न किया, "महाराज, बताइए, राजा और सेनापति—दोनों में कौन श्रेष्ठ है ?"

विक्रमादित्य ने उत्तर दिया, "राजा, जो शक्ति और सामर्थ्य रहते हुए भी अधर्म नहीं करता, वही श्रेष्ठ होता है।"

वैताल प्रसन्न होकर विक्रमादित्य की बुद्धि की प्रशंसा करने लगा—बहुत-बहुत प्रशंसा करने लगा।

२४

प्राणदान

हिमालय पर्वत के आस-पास गंधर्वों का एक नगर था।

गंधर्वों के उस नगर में जीमूतकेतु नाम का राजा राज्य करता था। उसको कोई सन्तान नहीं थी। वह बिना सन्तान के बहुत दुखी रहा करता था।

जीमूतकेतु सन्तान-प्राप्ति के लिए कल्पवृक्ष की पूजा करने लगा। उसकी पूजा-आराधना से कल्पवृक्ष प्रसन्न हुआ। कल्पवृक्ष की प्रसन्नता के फलस्वरूप जीमूतकेतु को एक पुत्र प्राप्त हुआ।

जीमूतकेतु ने अपने पुत्र का नाम जीमूतवाहन रखा।

जीमूतवाहन धीरे-धीरे बड़ा हुआ, पढ़-लिखकर विद्वान बना। वह बड़ा चरित्रनिष्ठ, धर्मात्मा, और परोपकारी था।

जीमूतवाहन जब बड़ा हुआ, तो वह भी कल्पवृक्ष की पूजा-

आराधना करने लगा। उसकी भी पूजा-आराधना से कल्पवृक्ष प्रसन्न हुआ। कल्पवृक्ष ने प्रसन्न होकर कहा, "जीमूतवाहन, मैं तुम्हारी पूजा-आराधना से बड़ा प्रसन्न हूं। बोलो, तुम्हें क्या चाहिए।"

जीमूतवाहन ने उत्तर दिया, "देव, ऐसी कृपा कीजिए, जिससे मेरे राज्य में कोई दुखी और दरिद्र न रहे।"

कल्पवृक्ष ने कहा, "ऐसा ही होगा जीमूतवाहन! तुम्हारे राज्य में कोई दीन, दुखी और दरिद्र न रहेगा।"

कल्पवृक्ष का वरदान पूरा हुआ। जीमूतवाहन के राज्य में कोई दरिद्र और दुखी नहीं रह गया। सबका घर धन-धान्य से भर गया। सब बड़े सुख और आराम से जीवन बिताने लगे।

पर इसका एक बड़ा बुरा फल भी हुआ। सब आलसी हो गए। सबने काम-काज करना बंद कर दिया। किसी को किसी का डर नहीं रह गया। सब मनमानी करने लगे।

जीमूतवाहन की प्रजा के आलस्य को देखकर, उसके शत्रुओं के मुंह में पानी आ गया। उन्होंने सोचा, 'क्यों न जीमूतकेतु के राज्य पर आक्रमण करके, उस पर अपना अधिकार कर लिया जाय?'

बस फिर क्या था? शत्रुओं ने बहुत बड़ी सेना के साथ चढ़ाई कर दी।

जीमूतवाहन शत्रुओं का मुकाबिला करने के लिए उद्यत हुआ, पर उसके पिता ने उसे समझाया, "बेटा, संसार में जो कुछ है, सब नाश हो जाने वाला है। जो नाश हो जाने वाला है, उसके लिए लड़ना, खून बहाना व्यर्थ है। यदि शत्रुओं की इच्छा राज्य लेने की है, तो प्रसन्नतापूर्वक राज्य को छोड़ दो चलो। हम दोनों वन में रहेंगे।"

पिता-पुत्र दोनों अपना राज्य छोड़कर मलयगिरि पर चले

गए, तपस्वियों का सा जीवन व्यतीत करने लगे।

मलयगिरि पर एक ऋषि रहते थे। उनका भी एक पुत्र था। जीमूतवाहन की उसके साथ मित्रता हो गई। दोनों साथ ही साथ रहते थे, साथ ही साथ सैर-सपाटे भी किया करते थे।

प्रभात के बाद का समय था। जीमूतवाहन अपने मित्र के साथ मलय पर्वत पर घूम रहा था। सहसा उसकी दृष्टि भवानी के मन्दिर की ओर गई। उसने देखा, मन्दिर में बैठकर एक युवती लड़की वीणा बजा रही है।"

जीमूतवाहन धीरे-धीरे चलकर मन्दिर के द्वार पर जा पहुँचा। उसने लड़की को देखा। लड़की परम सुन्दर थी। उसके अंग-अंग से सुन्दरता की ज्योति-सी निकल रही थी।

लड़की ने भी जीमूतवाहन को देखा। दोनों एक-दूसरे की ओर खिंच गए, मन ही मन एक-दूसरे को पाने की कामना करने लगे।

पर दोनों में से किसी ने भी किसी से कुछ भी नहीं कहा। दोनों एक दूसरे को अपने हृदय में रखकर अपने-अपने घर चले गए।

दोनों एक-दूसरे से मिलने के लिए प्रतिदिन भवानी के मन्दिर में जाने लगे। दोनों को एक-दूसरे का परिचय प्राप्त हुआ। जीमूतवाहन को मालूम हुआ, लड़की राजा मलयकेतु की पुत्री है। लड़की को मालूम हुआ, युवक राजा जीमूतकेतु का पुत्र है।

दोनों एक-दूसरे का परिचय पाकर बहुत प्रसन्न हुए।

दोनों की प्रेम-कथा आगे बढ़कर उनके कुटुम्बियों के भी कानों में पड़ी।

कुटुम्बियों ने आपस में बातचीत करके दोनों का गंधर्व विवाह कर दिया। दोनों एक-दूसरे को पाकर प्रसन्न हो गए, गुरुजनों की सेवा करते हुए, सुखपूर्वक जीवन व्यतीत करने लगे।

जीमूतवाहन विवाह-सूत्र में बँधने पर भी सदा धर्म और

परोपकार के कामों में लगा रहता था। वह जब और जहां किसी दीन-दुखी को देखता था, उसकी सहायता करने के लिए तैयार हो जाता था। दीन-दुखियों की सहायता करने में उसे स्वयं अपनी भी सुध-बुध नहीं रहती थी।

संध्या के पहले का समय था। जीमूतवाहन अपने साले मित्र-वसु के साथ मलयगिरि पर सैर कर रहा था। सहसा उसकी दृष्टि एक ढूह पर पड़ी, जो सफेद रंग का था।

जीमूतवाहन ने उस ढूह की ओर देखते हुए मित्रवसु से प्रश्न किया, "मित्रवसु, सामने जो सफेद रंग का ढूह दिखाई पड़ रहा है, वह क्या है ?"

मित्रवसु ने उत्तर दिया, "वह नागों की हड्डियों का ढेर है। प्रतिदिन सहस्रों नाग यहां एकत्र होते हैं। गरुड़ उन नागों को खा जाता है। यह ढूह उन्हीं की हड्डियों से बना है।"

जीमूतवाहन के मन में दुख पैदा हो उठा। वह सोचने लगा, गरुड़ उन नागों को क्यों खाता है, क्यों ? यह तो पाप है, बहुत बड़ा पाप है !

जीमूतवाहन मन ही मन सोचने लगा, विचार करने लगा।

जीमूतवाहन ने सोचते-सोचते कहा, "मित्रवसु, तुम घर चलो। मैं मन्दिर में पूजा करने जा रहा हूं।"

जीमूतवाहन मन्दिर की ओर चल पड़ा।

सहसा जीमूतवाहन के कानों में किसी के रोने की आवाज़ पड़ी। वह उस आवाज़ के सहारे धीरे-धीरे आगे बढ़ने लगा। उसने कुछ दूर जाकर देखा, एक वृद्धा स्त्री है, जो सकरुण स्वर में विलाप कर रही है।

जीमूतवाहन ने प्रश्न किया, "मां, तुम कौन हो ? यहां बैठकर क्यों विलाप कर रही हो ?"

वृद्धा ने नेत्रों से आंसुओं की वर्षा करते हुए कहा, "बेटा, यह

जो कुछ देख रहे हो, नागों की हड्डियों का है। आज इन्हीं हड्डियों में मेरे बेटे शंखचूड़ की भी हड्डियां मिलेंगी। अभी गरुड़ आ रहा होगा। वह मेरे बेटे शंखचूड़ को खा जायेगा। उसकी हड्डियां ही रह जायेंगी, केवल हड्डियां ही।"

जीमूतवाहन समझ गया, वृद्धा क्या कहना चाहती है? वह मित्रवसु से पहले ही सब कुछ सुन चुका था।

जीमूतवाहन के मन में दया उमड़ पड़ी। उसने वृद्धा को ढाढ़स बंधाते हुए कहा, "मां, तुम अधीर न हो। मैं तुम्हारे लड़के को मरने न दूंगा।

वृद्धा ने बड़े आश्चर्य से जीमूतवाहन की ओर देखा। उसने जीमूतवाहन की ओर देखते हुए आश्चर्य-भरे स्वर में कहा, "तुम लड़के को मरने नहीं दोगे, तुम मेरे लड़के को किस तरह बचाओगे बेटा?"

जीमूतवाहन ने उत्तर दिया, "अपने प्राण देकर मां! गरुड़ को भोजन चाहिए न! मैं उससे कहूंगा, वह तुम्हारे बेटे को छोड़ दे। उस के बदले में मुझे खाकर अपना पेट भरे।"

जीमूतवाहन ने अपनी बात समाप्त ही की थी कि, गरुड़ आ उपस्थित हुआ। उसका पर्वत के समान पेट, खोह के समान आंखें और ताड़ के समान लंबी चोंच थी।

जीमूतवाहन ने गरुड़ को देखकर कहा, "गरुड़, आज मैं हूं तुम्हारा भोजन।"

गरुड़ भूख से अंधा हो रहा था। वह जीमूतवाहन को अपनी चोंच में दबाकर उड़ पड़ा।"

गरुड़ अभी उड़कर ऊपर गया ही था कि, शंखचूड़ आ पहुंचा। उसने देखा, गरुड़ उसके स्थान पर किसी दूसरे को अपनी चोंच में दबाकर उड़ा जा रहा है।

शंखचूड़ बोल उठा, "गरुड़, तुम्हारा भोजन तो मैं हूं। तुम

उसे चोंच में दाबकर क्यों उड़े जा रहे हो ? "

गरुड़ ने शंखचूड़ की ओर देखा। वह नाग था, सचमुच वह उसका भोजन था, पर जो उसकी चोंच में है, वह कौन है ?

गरुड ने प्रश्न किया, "तुम कौन हो ? तुमने क्यों यह कहा, "आज मैं तुम्हारा भोजन हूं ?"

जीमूतवाहन ने उत्तर दिया, "शंखचूड़ की जान बचाने के लिए। दूसरों की जान बचाना, दूसरों के लिए त्याग करना सबसे बड़ा धर्म है। मैंने जो कुछ किया है, केवल धर्म के ही कारण किया है।"

जीमूतवाहन के त्याग ने गरुड़ के मन को जकड़ लिया। उसकी रग-रग में प्रसन्नता का सागर लहरा उठा। उसने प्रसन्नता-भरे स्वर में कहा, "तुम धन्य हो जो दूसरों के लिए जान देता है, उसे कोई नहीं मार सकता। मैं तुम्हारे त्याग से तुम पर बहुत प्रसन्न हूं। बोलो, तुम्हें क्या चाहिए ?"

जीमूतवाहन ने निवेदन किया, "पक्षिराज यदि हम पर आप प्रसन्न हैं, तो वचन दीजिए, भविष्य में आप नागों को नहीं खायेंगे। आप जिन नागों को खा चुके है, उन्हे जीवित कर देंगे।"

गरुड हर्ष से गद्‌गद होकर कह उठा, "अपने लिए भी तो कुछ मांगो।"

जीमूतवाहन ने उत्तर दिया, "नागों के लिए मांगकर मैं अपने लिए ही मांग रहा हूं पक्षिराज ! पक्षिराज जो प्राण मुझमें है, वही नागों में भी तो है।"

गरुड़ ने हर्ष से गद्‌गद होकर कहा, "हां है, पर मैं तुम्हें दिए बिना नहीं रहूंगा। तुम्हारा खोया हुआ राज्य फिर तुम्हें मिल जायेगा। तुम चक्रवर्ती राजा बनोगे।"

गरुड़ नीचे उतर आया। वह जीमूतवाहन को छोड़कर उड़ गया—दूर, बड़ी दूर !

गरुड़ के तीनों वचन सत्य हुए—नागों का संहार होना बन्द

हो गया, मरे हुए सभी नाग जीवित हो उठे, और जीमूतवाहन का खोया हुआ राज्य उसे पुनः मिल गया।

जीमूतवाहन राजसिंहासन पर बैठकर राज्य करने लगा। उसकी कीर्ति चारों ओर छा गई, दिग्-दिगन्तर में छा गई।

वैताल ने पूरी कहानी विक्रमादित्य को सुनाकर प्रश्न किया, "महाराज, बताइए, आप जीमूतवाहन और शंखचूड़—दोनों में से किसे श्रेष्ठ कहेंगे?"

विक्रमादित्य ने उत्तर दिया, "शंखचूड़ को, क्योंकि उसने यह जानकर भी कि, कोई दूसरा उसके लिए अपने प्राण दे रहा है, मरने की इच्छा प्रकट की।"

विक्रमादित्य के विचार ने वैताल के मन को बांध लिया—कसकर बांध लिया।

२५

सफलता की कुंजी

बहुत दिन हुए, उज्जैन में एक ब्राह्मण रहता था। ब्राह्मण का नाम वसुदेव था। वसुदेव बड़ा धर्मात्मा था।

वसुदेव के एक पुत्र था। पुत्र का नाम गुणाकर था, पर था बुराई का भण्डार। जुआ खेलता था, मद पीता था, मार-पीट किया करता था।

वसुदेव ने बेटे को बहुत समझाया-बुझाया, पर वह अपनी बुराइयों से बाज नहीं आया। ज्यों-ज्यों दिन बीतने लगे, उसकी बुराइयों में भी पंख लगने लगे।

माता-पिता सभी गुणाकर की बुराइयों से तंग आ गए। उन्होंने उसे घर से निकाल दिया।

गुणाकर इधर-उधर घूमने लगा, दर-दर की खाक छानने

"महाराज, वह सुन्दर स्त्री तो न जाने कहाँ चली गई। उसके जाने के साथ ही साथ कुञ्ज का सारा सामान भी गायब हो गया।"

योगी हँस पड़ा। उसने हँसते हुए कहा, "वह यक्षिणी थी। मन्त्र-बल से आई थी, तुम्हें खिला-पिलाकर चली गई।"

गुणाकर ने उत्सुकता के साथ प्रश्न किया, "महाराज, यक्षिणी मन्त्र के जोर से किस प्रकार आती है?"

योगी ने उत्तर दिया, "मन्त्र को जपकर सिद्ध किया जाता है। जो मन्त्र सिद्ध कर लेता है, उसके ही बुलाने पर यक्षिणी आती है।"

गुणाकर सोचने लगा। उसने सोचते-सोचते कहा, "महाराज, कृपा कर मुझे भी मन्त्र बता दीजिए। मैं भी मन्त्र सिद्ध करूँगा।"

योगी को दया आ गई। उसने गुणाकर को मन्त्र बता दिया, कहा, "इसे चालीस दिन तक पानी में बैठकर जपना होगा।"

गुणाकर सिद्धि के लिए पानी में बैठकर मन्त्र जपने लगा। उसने बड़े-बड़े कष्ट उठाकर, चालीस दिनों तक मन्त्र का जाप किया, पर उसे सिद्धि नहीं प्राप्त हुई।

गुणाकर निराश होकर पुनः योगी की सेवा में उपस्थित हुआ। उसने योगी से कहा, "महाराज, मैंने चालीस दिन तक पानी में बैठकर मन्त्र का जाप किया, पर मुझे सिद्धि नहीं प्राप्त हुई।"

योगी ने कहा, "चिन्ता मत करो। उसी मन्त्र को आग में बैठकर चालीस दिन तक जपो, अवश्य सिद्धि प्राप्त होगी।"

गुणाकर ने कहा, "घर से निकले हुए काफी दिन हो गए है। एक बार माता-पिता, भाई-बंधुओं से मिल आऊँ तो जपूँगा।"

गुणाकर घर लौट गया। उसके माता-पिता, भाई-बंधु सब बहुत प्रसन्न हुए। उन्होंने कहा, "अच्छा किया, तुम लौट आए।

लगा।

संयोग की बात, गुणाकर एक योगी के पास पहुँचा! योगी धूनी लगाए बैठा हुआ था।

गुणाकर कई दिनों का भूखा था। उसका मुख मुरझाया हुआ था। योगी ने उसकी ओर देखते हुए कहा, "भूखे जान पड़ रहे हो! कुछ खाओगे?"

गुणाकर ने उत्तर दिया, "खिलाएंगे तो क्यों नहीं खाऊंगा!"

योगी ने खोपड़ी के अपने पात्र को ऊपर उठाया। आश्चर्य, पात्र पूरियों और शाक से भर गया।

योगी ने खोपड़ी गुणाकर की ओर बढ़ाते हुए कहा, "लो, खाओ।"

गुणाकर ने उत्तर दिया, "मैं ब्राह्मण हूँ। मैं खोपड़ी में भोजन नहीं कर सकता।"

योगी बोल उठा—"अच्छी बात है! मैं तुम्हारे लिए कुछ और प्रबन्ध कर रहा हूँ।"

योगी ने मंत्र पढ़कर बड़े जोर से आवाज लगाई, "आओ, शीघ्र आओ।"

आश्चर्य, एक अत्यन्त सुन्दर यक्षिणी सामने आकर खड़ी हो गई। योगी ने उसे आदेश देते हुए कहा, "ले जाओ इस युवक को! इसे सब प्रकार से सुख पहुँचाओ।"

यक्षिणी ने शीघ्र ही एक महल तैयार करके, उसमें गुणाकर को ठहरा दिया। उसके खाने-पीने और सोने-बैठने की व्यवस्था भी कर दी। नौकर-चाकर भी सेवा-टहल के लिए आ गए।

गुणाकर रात-भर उस महल में बड़े सुख से रहा। सवेरे जब सोकर उठा, तो देखता है, न महल है, न यक्षिणी है, न नौकर-चाकर हैं। वह अकेला, बिलकुल अकेला जमीन पर पड़ा है।

गुणाकर पुनः योगी के पास गया। उसने योगी से पूछा,

"महाराज, वह सुन्दर स्त्री तो न जाने कहाँ चली गई। उसके जाने के साथ ही साथ सुख का सारा सामान भी गायब हो गया।"

योगी हँस पड़ा। उसने हँसते हुए कहा, "वह यक्षिणी थी। मन्त्र-बल से आई थी, तुम्हें खिला-पिलाकर चली गई।"

गुणाकर ने उत्सुकता के साथ प्रश्न किया, "महाराज, यक्षिणी मंत्र के जोर से किस प्रकार आती है ?"

योगी ने उत्तर दिया, "मन्त्र को जपकर सिद्ध किया जाता है। जो मन्त्र सिद्ध कर लेता है, उसके ही बुलाने पर यक्षिणी आती है।"

गुणाकर सोचने लगा। उसने सोचते-सोचते कहा, "महाराज, कृपा कर मुझे भी मन्त्र बता दीजिए। मैं भी मंत्र सिद्ध करूँगा।"

योगी को दया आ गई। उसने गुणाकर को मन्त्र बता दिया, कहा, "इसे चालीस दिन तक पानी में बैठकर जपना होगा।"

गुणाकर सिद्धि के लिए पानी में बैठकर मन्त्र जपने लगा। उसने बड़े-बड़े कष्ट उठाकर, चालीस दिनों तक मन्त्र का जाप किया, पर उसे सिद्धि नहीं प्राप्त हुई।

गुणाकर निराश होकर पुनः योगी की सेवा में उपस्थित हुआ। उसने योगी से कहा, "महाराज, मैंने चालीस दिन तक पानी में बैठकर मन्त्र का जाप किया, पर मुझे सिद्धि नहीं प्राप्त हुई।"

योगी ने कहा, "चिन्ता मत करो। उसी मन्त्र को आग में बैठकर चालीस दिन तक जपो, अवश्य सिद्धि प्राप्त होगी।"

गुणाकर ने कहा, "घर से निकले हुए काफी दिन हो गए हैं। एक बार माता-पिता, भाई-बंधुओं से मिल आऊँ तो जपूँगा।"

गुणाकर घर लौट गया। उसके माता-पिता, भाई-बंधु सब बहुत प्रसन्न हुए। उन्होंने कहा, "अच्छा किया, तुम लौट आए।

अब अपनी बुराइयों को छोड़कर, घर पर ही काम-काज करो।"

पर गुणाकर घर पर न रहा। कुछ दिनों बाद वह फिर जाने के लिए तैयार हुआ। उसके घर के लोगों ने उसे रोकने का बहुत यत्न किया, पर वह न रुका। वह फिर योगी के पास जा पहुँचा।

गुणाकर आग के बीच में बैठकर मंत्र जपने लगा। उसने चालीस दिन तक मन्त्र का जाप किया, पर उसे सिद्धि नही प्राप्त हुई।

गुणाकर पुनः योगी की सेवा में उपस्थित हुआ। उसने योगी से कहा, "महाराज, मैंने आग में बैठकर भी चालीस दिन तक मंत्र का जाप किया, पर मुझे सिद्धि नही प्राप्त हुई। बताइए, मुझे सिद्धि क्यों नही प्राप्त हुई ?"

योगी ने उत्तर दिया, "तुम्हारे इस 'क्यों' का यथोचित उत्तर महाराज विक्रमादित्य को छोड़कर और कोई नही दे सकता।"

गुणाकर महाराज विक्रमादित्य के दरबार में पहुँचा, उन्हें अपनी पूरी कहानी सुनाकर बोला, "महाराज, बताइए, मुझे सिद्धि क्यों नहीं प्राप्त हुई ?"

महाराज विक्रमादित्य ने उत्तर दिया, "सिद्धि और सफलता मन की एकाग्रता से मिलती है। तुमने मंत्र का जाप अवश्य किया, पर आधे मन से किया। तुम्हारा आधा मन तो अपने कुटुम्बियों और यक्षिणी की सुन्दरता की ओर लगा हुआ था, फिर तुम्हें सिद्धि कैसे प्राप्त हो सकती थी !"

महाराज विक्रमादित्य के उत्तर को सुनकर बैताल बोल उठा, "आप बिलकुल सच कह रहे हैं महाराज! सफलता का मंत्र मन की एकाग्रता है—दृढ़ एकाग्रता है।"

□□

10736
28.5.90